प्रयोग कालीन बच्चन

Prayog Kalin Bachan

लेखक—

श्रीयुत सत्यप्रकाश 'मिलिन्द'

Saty Prakash 'Milind'

प्रकाशक—

प्रमोद-पुस्तक-माला

कटरा, प्रयाग।

प्रथमवार ११००] जुलाई १९४२ [मूल्य १)

1942

प्रकाशक—

पं० करुणाशंकर शुक्ल

प्रोप्राइटर—

प्रमोद-पुस्तक-माला

कटरा, प्रयाग।

मुद्रक—

श्री रघुनाथप्रसाद वर्मा

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग।

सस्नेह

निर्देश

साहित्य क्या है ?

मानव जीवन के वैचित्र्य और वैषम्य के प्रकाशन का नाम ही साहित्य है। साहित्य के विषय में यह कह डालना कि अमुक चीज़ है, दुर्लभ है। भिन्न भिन्न परिस्थितियों एवं व्यक्तियों के दृष्टि-कोण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इसी कारण साहित्य की कोई भी निर्दिष्ट परिभाषा नहीं दी जा सकती। शीघ्र ही हमारे सामने एक प्रश्न आजाता है कि कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समुदाय तो इस साहित्य का उत्पादक अवश्य ही होगा। सहसा हमारा अध्ययन हमें हाथ बँटाने को आ लगता है। यह अधिकतर देखने में आता है कि साहित्य और काल विरोधात्मक रेखाओं में दौड़ लगाते हैं। आज भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा पड़ा है। उसके सम्मुख उसके उत्थान का प्रश्न है। एक जागृति की आवश्यकता है। इसके लिए एक साधन अनिवार्य है। सरलतम वस्तु, जो हमें प्राय: अध:पतित अवस्था से उन्नति की ओर अग्रसर करती है, वह है हमारा साहित्य। विचारणीय विषय है साहित्य के उद्भव का क्या कारण है और साहित्य किस वस्तु विशेष का नाम है। चार्ल्स लैम्ब के मतानुसार तो शायद हमें अपनी साहित्यिक परिभाषा का इतना परिमित एवं विनिर्मित करना पड़ेगा कि हम कालिदास, भवभूति, अथवा ह्यूम गिबन, और फ्ज़ेवियस या फिराक़ और

जिगर की रचनाओं को भी साहित्य की श्रेणी में लाने से पूर्व थोड़ा सा हिचकें। बात तो सच्ची और सीधी यह है कि साहित्य का स्वरूप और उसकी परिभाषा सदैव परिवर्तित होती रही है। हैलभ के विचार से विज्ञान, दर्शन न्याय और गणित आदि को ही साहित्य कहा जा सकता है। किन्तु यह परिभाषा देना तो ज्ञान की अन्य धाराओं के लिए प्रतारणा करना है। हमारा ध्येय तो इस निबन्ध में यह रहेगा कि हम विचारें कि साहित्य का वास्तव में उद्देश्य क्या है?

हमने सबसे पहले वाक्य में कहा था कि साहित्य में वैचित्र्य और विभिन्नता है। लेकिन इससे तो हमारे कार्य में कोई बाधा विशेष नहीं पड़ती। भावना का उद्रेक, भाषा का ज्ञान और हृदय की पिपासा आदि अनेक ऐसी ही मानसिक युक्तियों ने संसार के बड़े बड़े साहित्य को हमारे सामने ला डाला। हम अपने साहित्य के अध्ययन को कई पहलुओं से देखने के लिए उद्यत हैं। एक साधारण सी धारणा प्रचलित हो चली है कि साहित्य किसी राष्ट्र, समाज और काल का प्रतिनिधित्व करता है। यह तो निर्दिष्ट होते हुए भी अनिर्दिष्ट सी गाथा है। साहित्य हमारी धारणाओं का प्रतीक अवश्य है; और हम समाज के निर्माता एवं प्रमुख अंग हैं। अतएव किसी भी देश और काल का साहित्य उसकी वास्तविक अनुभूतियों का प्रकाशन है और उसकी निहित दशा को व्यक्त करने वाला दर्पण है। किन्तु यह बात निसंदेह कही जा सकती है कि किसी समाज की हीनता

और उसके साहित्य की हीनता एक दूसरे का परिचायक नहीं है। 'विरचाउ' का कथन है कि मानव के लिए प्रकृति एक नवीन सी चीज़ है। वह उसे देखकर विस्मित और विक्षिप्त सा रह जाता है। यही विस्मयोद्रेक हमारे साहित्य का उद्भव वन जाते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि साहित्य उन्हीं पुस्तकों से बनता है, जो जन साधारण को भी अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। साहित्य और व्यक्ति गत जीवन में प्रगाढ़ सम्बन्ध है। साहित्य में व्यक्तित्व की प्रधानता रहती है। कला जीवन का प्रकाशन करती है। हमारे जीवन में स्थल स्थल पर वैचित्र्य है। इसी कारण हमारे साहित्य में वैचित्र्य का आगमन एक अनिवार्य सी घटना है। साहित्य की सरलता एवं जटिलता तो तत्कालीन समाज की संकीर्णता अथवा विशाल हृदयता पर बहुत कुछ अवलम्बित है। साहित्य का अध्ययन हमारे व्यक्तिगत जीवन का सापेक्षिक अध्ययन ही है। किसी भी विशाल ग्रन्थ की उत्पत्ति का मूल कारण ज्ञान-प्राप्ति के लिए मानवीय उत्सुकता ही रहती है। वास्तव में साहित्य मनुष्य के अनुभवों का इतिहास है। किसी भी मनुष्य ने आत्मबोध अथवा आत्मसंशयात्मक विषयों को लेखनी बद्ध कर दिया। वही उस समय का साहित्य वन गया। साहित्य में एक तन्मयता है, उस तन्मयता का कारण मनुष्य की संसार और जीवन के प्रति असंतुष्टि है। मानव-संसार और जीवन की अपूर्णता को अवलोक विभोर हो उठता है। वह उस संपूर्णता

की प्राप्ति के लिए विह्वल हो उठता है। इसी कारण वास्तव में साहित्य मनुष्य के विचार और अनुभव का ही दूसरा नाम है। प्रोफ़ेसर हडसन के अनुसार "Literature is fundamentally an expression of life through the medium of language" मानव जीवन से पृथक साहित्य का अस्तित्व अत्यंत ही कम हो जाता है। साहित्य का उन्मेष मानवता का ही विकास है। साहित्य अन्तर्यामी है। पतित से पतित और घृणित से घृणित जाति एवं राष्ट्र का भी एक मौलिक साहित्य है। वैसे तो एक नवजात शिशु की चीत्कार में सबसे बड़ा साहित्य विलुप्त है। साहित्य और जीवन का सम्बन्ध अविच्छेदनीय है।

मानव जीवन और साहित्य में कितना गहन सम्बन्ध है। शिशु के संसार में आने के समय से ही उसके जीवन में साहित्य का समावेश हो जाता है। हम इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कर सकते कि साहित्य और मनुष्य-समाज एक दूसरे पर निर्धारित हैं। मनुष्य की भाषा ही साहित्य है। वह जैसे जैसे उन्नतिशील होता है और उसकी आयु में वृद्धि होती है, वैसे ही वैसे उसका साहित्य भी पनपता चला जाता है। वास्तव में देखा जाये तो साहित्य की उपयोगिता मानव-जीवन को सफल और सुखमय बनाने में अधिक है। साहित्य केवल मनुष्य के ज्ञान-भंडार की वृद्धि ही नहीं करता, अपितु वह उसके लिए एक आमोदात्मक साधन भी है। मानसिक पिपासा से उत्पन्न हुई आकुलता को शान्त करने का एक मात्र साधन केवल मानव का

साहित्य ही है। हमारी समस्त साहित्यिक प्रतिक्रियाओं के पीछे चार कारण मुख्य होते हैं। हम अपने विचारों और अनुभवों और आप बीती को प्रकाशित करने के लिए उतावले हो उठते हैं। वह प्रकाशन ही साहित्य का नाम धारण कर लेता है। फिर संपूर्णता की प्राप्ति के लिए जगह जगह मारे मारे फिरते हैं। तभी हम मानव की भोली भाली क्रियात्मक योजनाओं के अन्तर्गत भी एक साहित्य की प्रतिच्छाया ही देखते हैं। तीसरे हम सत्य तक पहुँचने के लिए उतावले हो उठते हैं। हम तो उस प्रकाश को देखना चाहते हैं, जो किसी कवि के कल्पना-संसार में ही मिल पाता है—

The light which never was on land or sea,
The condecation and the poet's dream.

वास्तव में सत्यता का निकेतन साहित्य ही है। समस्त मानवता की भव्य अभिव्यक्ति साहित्य ही है। धार्मिक च्युति में उत्पन्न हुई साहित्यिक कृतियाँ लोक की विकृत रुचि की प्रतिच्छाया ही रहती हैं। वे विकृत समाज की रुचि को परिष्कृत करती हैं। और उसके लिए साहित्यिक पद पद पर समाज से द्वन्द्व युद्ध ठानते चले जाते हैं। अन्त में यह देखा जाता है कि जो संकीर्ण भाव विलास-प्रियता एवं संस्कृति त्याग आदि किसी समाज को दूषित कर उसको अन्तस्तल की पराकाष्ठा तक पहुँचाने के लिए उद्यत रहते हैं वे युग के साहित्य द्वारा सुगमता पूर्वक दूर हो सकते हैं। वास्तव में 'Literature according

to Matthew, Arrold's much discussed definition is a criticism of iife; but this can mean only that it is an nterpretation of life as life shapes itself in teh mind of the interpreter. अथवा is The truth of idea is attained in eiterasature no work of creative literature can be realistic in the sense that the author has reproduced reality and not the mental aspect of reality" साहित्य का एक विशद विश्लेषण कर हमारे सामने उसका एक अत्यंत ही प्रचुर एवं आभा-युक्त रेखाचित्र उपस्थित कर देते हैं।

चतुर्थ एवं अंतिम साधन साहित्यिक उत्पत्ति का कारण हमारी कृत्रिमता और वास्तविकता के सम्मिलन के प्रति प्रेम भावना है। समस्त साहित्य दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी में हम आत्म-विश्लेषण के नाते लिखित साहित्य को लेते हैं। उसके अन्तर्गत हम गीत, उपासनार्थ लिखे भजन, एवं आरतियों और स्वपरिचयात्मक निबन्धों की गणना कर सकते हैं। दूसरी श्रेणी के साहित्य में लेखक व्यक्ति गत जीवन का इतना विशद विवेचन करने के स्थान पर समस्त सृष्टि से ही कोई शिक्षा प्राप्त करना चाहता है। इसी श्रेणी के साहित्य में इतिहास, जीवनी, आख्यायिका उपन्यास और नाटक आदि की गिनती भी की जा सकती है। इसके अतिरिक्त साहित्य अन्य दो भागों में भी विभाजित किया जा सकता है। वे हैं (१) काव्य (२) विज्ञान। काव्य

अर्थात् ललित साहित्य की श्रेणी में कविता, कहानी और उपन्यास आदि और विज्ञान अथवा उपयोगी साहित्य की श्रेणी में भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि हैं।

कुछ भी हो, साहित्य की परिभाषा और माप हम कहीं और कुछ भी निर्धारित करें, इसमें सन्देह नहीं कि 'Life without and an art impulse is a burden' साहित्य की परिभाषा इतनी सुगमता से नहीं दी जा सकती। सच तो यह है कि छोटे से छोटे कण से लेकर प्रासाद, महल और पर्वत तक सभी साहित्य के अंग प्रत्यंग हैं। फिर हम साहित्य की विभिन्न परिभाषाओं में कहां तक सामञ्जस्य स्थापित करें। यह तो बहुत ही दूभर हो उठता है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि साहित्य युग और काल से परे की चीज़ है। संक्षेप में साहित्य विश्व-मानव का हृदय है। हमारी भावनाओं का प्रतीक है, क्योंकि 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'। श्रेष्ठ भाव हमारा सहगामी और सदा का साथी है। सुन्दर भावों का संग्रह ही हमारा प्रधान साहित्य है। हमारा साहित्य हमारे लिए एक स्वच्छ दर्पण है और समाज के लिए एक सुगम प्रकाशन का साधन है।

प्रगतिशील साहित्य

कविता हमारी विचार धारा का ही प्रकटीकरण है, हमारी वास्तविकता का ही प्रकाशन है। हमारी कल्पनाशक्ति और हमारी धारणायें ही हमारी कविता के उत्पादक बन जाते हैं। साहित्य हमारे जीवन का अन्वेषण और विश्लेषण है। यह बात यदि हम साहित्य और विज्ञान को तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखें तो अत्यंत ही सरल बन जाती है। तत्त्व और कल्पना दो विभिन्न शक्तियां हैं। इन दोनों के व्यक्तिगत प्रभाव से ही हमारा आह्लाद और विषाद शब्दों का जामा पहिन बाहर निकलता ही चला आता है। 'टेन' के अनुसार किसी भी राष्ट्र का साहित्य कई बातों पर निर्भर रहता है—उस देश के जन साधारण की विचार धारा, उसकी जातियों के अन्तर्गत सम्बन्ध, उसकी जलवायु, प्राकृतिक विशेषताएं, राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अवस्था।

यद्यपि आज तो यह धारणा प्रवलतर होती जा रही है कि किसी भी देश का साहित्य युग, काल और परिस्थितियों से प्रेरित नहीं हो सकता तो भी यह बात नहीं भुलाई जा सकती कि किसी भी समय के कवियों के विचार तत्कालीन समस्याओं से अप्रभावित नहीं रह सकते। हम किसी भी साहित्य को उठा देखें। आज उर्दू में तरक्की पसन्दी की लहर है। अब तो कुछ

दिनों से ऐसे गद्य और पद्य, साहित्य और काव्य की भी रचना संभव हो गई है जो हिन्दी और उर्दू दोनों भाषा भाषियों को रुचिकर प्रतीत होते हैं। यहाँ तक कि दोनों भाषाओं में एक दूसरी भाषा के शब्दों के प्रयोग की गति भी तीव्रतर होती जा रही है। आज तो हज़रात जोश, जिगर, सलाम, मजरू, फ़िराक़, ऐहसान, दानिश, मानी जायसी, ग़ालिब आदि के अशार में एक नई सी लहर दिखाई देती है। जो हमारे हिन्दी-साहित्य में निराशा की आत्मा है, वही हज़रत आतिश की ज़ेल शैर में मौसूल है :—

न पूछ हाल मेरा चोबे ख़ुश्क के सेहरा हूँ।
लगा के आग मुझे क़ाफ़िला रवाना हुआ॥

जिस आत्म परिचय को लेकर आतिश साहिब ने यह गज़ब का शेर लिख डाला, उसी पर संभवतः हार्डी का समस्त पैसिमिज़्म अवलम्बित है। लार्ड बेकन की Life नामक कविता में जो जीवन की परिभाषा है वही आज हमारी समस्त अनुभूतियों का प्रकाशन अनिवार्य कर देती है। वे कहते हैं :—

"The world's a bubble, and the life of man
Less than a span:"

कहने का तात्पर्य यह कि जिस प्रकार यद्यपि मैसफ़ील्ड ब्रिजेज़, हार्डी, नायडू, टैगोर आदि के विचार भिन्न हैं तो भी क्योंकि वे ज्यौर्जियन काल की उत्पत्ति हैं उनके अन्दर कतिपय समधारायें हैं। उदाहरणार्थ उन सबमें विप्लव की एक प्रबल आकांक्षा है;

अमीरों के प्रति एक घृणा है, निर्धन के प्रति दया प्रेम और श्रद्धा है; और साहित्यिक बन्धनों और प्रतिबंधों के प्रति एक प्रगाढ़ विरोध है। यूरोपीय महासमर ने, धनिकों की अराजकता ने, एवं सामाजिक कुरीतियों ने हमारे कवियों में एक वेदनात्मक अभिव्यक्ति करदी। ये तो विप्लव के कारण और साधन थे अंग्रेजी साहित्य में।

लेकिन उर्दू के अन्दर से काफिए का बहिष्कार, गजलों का पुनरुत्थान यह सब भी सामयिक ही हुआ करता है। कोई भी साहित्य किसी परिमित श्रेणी तक ही अपने को बाधित रख सकता है। आज प्रत्येक साहित्य उन बन्धनों को उखाड़ फेंकना चाहता है। हिन्दी हो या उर्दू, फ़ारसी हो या संस्कृत, प्रत्येक भाषी-भाषा के लिए एक निर्धारित व्यवस्था से चलना कभी दूभर हो जाता है। तब उस काल, एवं देश के निवासियों और साहित्यिकों के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वे रुढ़िवाद के किसी अमुक घटना के अथवा किसी दुर्व्यवस्थित परिस्थिति के प्रतिकूल आवाज़ उठावें। यही हाल है आज उर्दू के शायरों में। हजरत बेनज़ीर शाह की निम्नलिखित शेर में जिंदगी का राज़ मुज्तिला है:—

बड़ी यहतियान तलब है यह जो शराब सागर दिल में है।
जो छलक गई तो छलक गई। जो भरी रही तो भरी रही।

तरक्की पसन्द उर्दू शायरी की बेहतर हालत है। वहाँ शायरों का यह प्रयास है कि वे भाषा को परिमार्जित और सरल बना सकें,

मुहावरे और बोल चाल की भाषा का प्रयोग नित्यप्रति की समस्याओं को कविता के रूप में व्यक्त करने में करे। "नींद आई जाती है हुस्न के फसाने से 'या' किधर चला है इधर इक रात बसता जा, गरजने वाले गरजता है क्या बरसता जा'। आज प्रत्येक का प्रयत्न है कि अशार ज़बान का चटखारा करें। बेलाग और स्वाभाविक समस्याओं पर सरलतम भाषा में लिख देना भी प्रगतिशीलता का ही एक अंश है। स्वर और ध्वनि, मृदुलता और संगीत ये सब ही चीजें आज की कविता के लिए अनिवार्य हैं। नीचे दिये शेर इन आवश्यकताओं की पूर्ति करता चला जाता है:—

दिल का छाला फूटा होता।
काश यह तारा टूटा होता॥
शीशये दिल को यों न उठाओ।
देखो हाथ से छूटा होता। (अज़ीज, लखनवी)

उर्दू की क्रान्ति को तो हम शायद एक पुरानी चीज़ कहते हुए झिझकें भी नहीं। किन्तु हिन्दी की प्रगतिशीलता एक नई चीज़ नहीं है। किन्तु इधर कुछ दिनों से यह प्रश्न गूढ़ सा होता चला जा रहा है। हम आज जब आंखें खोलकर देखते हैं तो पलभर में हमें समस्त संसार परिवर्तित सा प्रतीत होता है। संसार अपना पासा तेजी के साथ पलटता जा रहा है। आधुनिक आविष्कारिक दुनिया और नित्यप्रति घटनेवाली घटनाएँ एवं विश्वव्यापी युद्ध के घुमड़-घुमड़ कर चढ़ आने-

वाले बादल हमारे समक्ष एक नवीनतम संसार की अभिव्यक्ति करा देते हैं। हम इस दुनिया को बिलकुल बदला सा देखकर सहम उठते हैं। विक्षिप्त से, चकित से, विकल से, आकुल से हम यह विचारने के लिए आतुर हो उठते हैं कि ये सब परिवर्तन क्यों हो रहे हैं। कवि में कल्पना शक्ति अत्यंत ही प्रबल है। वह इन परिस्थितियों का अवलोकन कर सहसा उड़ाने भरने लगता है; एक दूसरी ही दुनियां की बातें सोचने लगता है। वह जीवन के कटु सत्य से प्रभावित हो जाता है, वह साहित्यिक अन्वेषण के फल स्वरूप यह मानने के लिए कभी भी उद्यत नहीं कि संसार में दुख की अनिवार्यता है। वह मौलिकता की प्राप्ति के लिए क्रान्तिकारी बन उठता है।

आज पूँजीवादियों का युग है। मध्यवर्गीय व्यक्ति अपना स्वार्थ आगे फेंकते चले जा रहे हैं। उनका ध्येय तो केवल धनोपार्जन है। चाहे कैसे ही हो इससे उनका मन्तव्य नहीं। हमारा कवि इस प्रकार के व्यवहार से व्यथित, विलत्र का मूल मंत्र छोड़ता चला जाता है। वह जीवन के कठिन सत्यों को निर्मम भाषा में ही प्रकट करने के लिए उद्यत हो उठता है।

यदि हम किसी व्यक्ति से यह पूछ बैठें कि हिन्दी-साहित्य में प्रगतिवाद क्या है, तो उत्तर यही मिलता है कि श्री भगवती चरण वर्मा की 'भैंसागाड़ी' से उत्तम उदाहरण क्या मिलेगा। हमारी आंखों के सामने दो दृश्य बिलकुल ही प्रत्यक्ष आजाते हैं। एक ओर है हमारा पूंजीवादी समाज और उसकी अराजकता और

दूसरी तरफ़ है हमारे दीन क्षीण किसानों की अव्यवस्थित मर्म-स्पर्शी दशा। इसी दीनता और क्रूरता के वैषम्य से प्रेरित होकर हमारा मन बहुत सी बातें सोच डालता है। लेकिन यह बात तो थोड़ी अप्रसंगमय प्रतीत होती है कि प्रगतिशीलता नवीन सी ही चीज़ है। हमारे जीवन में विकास है, हम नित्य प्रति आगे बढ़ना चाहते हैं। बन्धनों और रूढ़ियों का अनुकरण तो हमारी प्रकृति के प्रतिकूल सी बात है। हम साम्य के पुजारी बन समस्त संसार को एक ही अवस्था में देखने को उत्सुक हैं। १७६५ से आजतक हमारे ऊपर अंग्रेज़ी तानाशाही का जुआ धरा है। हम उसे उतार फेंकने के लिए उतावले हैं। पंत की 'युगवाणी' आज के प्रत्येक भारतीय की आवाज़ है। हम पूँजी-पतियों और सामन्त शाहियों के विरोध में अपनी आवाज़ को बुलन्द करना चाहते हैं।

साहित्य एवं देश की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति विलग नहीं की जासकती। एक का दूसरे पर निरन्तर प्रभाव है। कुछ वर्षों से हमारे देश में स्वतन्त्रता की अग्नि भड़कती जा रही है। शायद वह आग साहित्यिक क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'भारत दुर्दशा' नामक नाटक में सुलगाई गई थी। श्री मैथिलीशरण की 'भारत-भारती' ने अंगारों को दहका दिया और उससे पूर्व ही राय देवी प्रसाद 'पूर्ण', श्री प्रतापनारायण चौधरी आदि ने उसे भभकाया और आखिर वह गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन में भभक ही उठी। हम तभी से नित्यप्रति

अपने साहित्य में एक आन्दोलन, विप्लव और क्रान्ति का संदेश दुनिया को सुनाने के लिए आकुल हो रहे हैं। हम अपनी प्राचीन सभ्यता के लिए विकल हो उठते हैं, और कहने लगते हैं:—

'कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन,
वह सुवर्ण का काल ?
भूतियों का दिगन्त छवि जाल,
ज्योति-चुम्बित जगती का भाल।'

देवी महादेवी, निराला, पंत, बच्चन की लिरिक्स ने पुरानी लकीर का फ़कीर बनना पसन्द न किया। हमारी काव्य-धारा में प्रगतिवाद का स्थान केवल उन विकास कालीन धारा के कवियों तक ही संकुचित नहीं, अपितु आज हमारे प्रयोग कालीन कवियों में लगभग सभी क्रान्तिकारी शक्तियां हैं। बालकृष्ण 'नवीन' 'एक भारतीय आत्मा' भगवतीचरण वर्मा, दिनकर और बच्चन सभी के सब समाज के प्रतिकूल भावनाय हृदय में रखकर एक ऊँची आवाज़ उठा रहे हैं। वैसे तो पुरातन काव्य-धारा में प्रगितशीलता अपनी सर्वोच्च अवस्था में थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा था:—

अंगरेज, राज सुख साज सजे सब सारी।
पै धन विदेस चलि जात एहै अतिख्वारी॥

× × ×

सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

श्री नवीन की 'गान्धी-गुरुदेव', 'मानव', 'कुंकुम' आदि अनेक उसी प्रयोजन की कवितायें हैं। सुश्री सुभद्राकुमारी चौहान एवं श्रीत्रिसूल 'सनेही' की बहुत सी कृतियाँ और 'युगान्त' और 'बापू के प्रति' पंत की अमूल्य निधियाँ हैं। भगवती बाबू की 'भैंसा गाड़ी' और नरेन्द्र की 'प्रभात-फेरी' इसी के प्रमाण हैं।

आज तो शहर-शहर में सब इस ओर प्रयाण कर रहे हैं। लखनऊ में तो इस दो तीन वर्ष पूर्व बीते प्रयत्न किया गया था, लेकिन आज तो प्रयाग का प्रगतिशील क्लब काफी प्रसिद्ध हो चला है। उसका मन्तव्य है अपनी पुरानी संस्कृत की रक्षा। इस ओर हिन्दी-साहित्य ने अपना क़दम बहुत तेजी के साथ उठाया है और आशा तो यही है कि हम शीघ्र ही अपनी समस्त त्रुटियों को साहित्यिक अभिव्यक्ति एवं प्रकाशन द्वारा दूर कर सकेंगे।

प्रयोगकालीन काव्यधारा

मनुष्य और काव्य का सम्बन्ध सर्व पुरातन है, इसमें संदेह नहीं। यही दशा हमारे भारतीय काव्य की है। कविता मनुष्य की किसी भी रसविदग्धता को आलोकित करती है। किन्तु हम तो अपने अध्ययन को एक परिमित दृष्टिकोण से ही देखते रहे हैं। वास्तव में बात तो यह है कि आज कविता द्वारा हम लोग भी जीवन का विशद विवेचन करने में सफल हो रहे हैं। यह हमारे अनवरत अध्यवसाय का ही परिणाम हैं। आंतरिक अनुभूतियों के साथ ही साथ सतत परिश्रम का स्थान काव्योत्पादन में अनिवार्य है। फिर हमारी आधुनिक कविता तो द्विवेदी जी के प्रतापस्वरूप रूढ़िग्रस्त परम्परा को नया सा पथ सुझा रही है। हमारी आधुनिक हिन्दी कविता श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी जी के मतानुसार भारतेन्दु युग से आरम्भ होती है। लेकिन श्रीभारतेन्दु जी के पास शब्द-कोष कम था। हिन्दी की वास्तविक उन्नति और उत्थान श्री महावीरप्रसादजी द्विवेदी के प्रयाग आने के समय से हुई। आधुनिक हिन्दी-कविता को हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं। हमारे साहित्य की उदयकालीनधारा द्विवेदी युग का ही प्रताप रहा है। इस युग के कवियों ने अपनी आर्य संस्कृति के पुनरुत्थान की ओर पूर्ण प्रयास किया। उस समय जागरण गान की आवश्यकता भी

थी। इस युग के सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', श्रीधर पाठक, हरिऔधजी, रामनरेशजी त्रिपाठी, एवं श्रीनाथूराम 'शङ्कर' शर्मा सभी ने एक नया सा जीवन फूँक डाला। विक्षिप्त अवस्था से हमें जागृत परिस्थितियों में ला खड़ा कर दिया। यह प्रयास १९१९ तक प्रचलित रहा। उसके उपरान्त १९१९ से १९२९ तक एक नया धारा प्रवाह हिन्दी काव्य-क्षेत्र को क्षत विक्षत करता चला गया। भारत की शासन-प्रणाली में अराजकता का स्थान नित्य प्रति बढ़ता ही चला गया। आखिर यह बात हमारे हृदयों को बेधने लगी। एक ऐसा भाव उत्पन्न हुआ कि हम विषम समस्याओं से प्रेरित हो होकर अस्थिर हो उठते हैं। परिस्थितियाँ उन्हें इस बात को प्रेरित कर देती हैं कि हम अपनी वास्तविक अनुभूतियों का प्रकाशन करें। श्री माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, रायकृष्णदास, निराला, नवीन, पंत, वियोगी, चौहान की कविताओं में इस भावना का परिष्कृत स्वरूप दृष्टिगोचर हो जाता है। उदय-कालीन,कवि अपनी पुरातन समाज का ही नवीन स्वरूप बन गया है; लेकिन उत्थानकाल का कवि अपनी वास्तविक भारतीय संस्कृति को सर्वथा भुला तो नहीं पाता, तो भी यह अवश्य है कि वह उसके प्रति एक उपदेशक का कार्य, भी नहीं करना चाहता। झंझा, आंधी, तूफ़ान, और वज्रपात यह नहीं कि उस पर गिरे ही न हों, अपितु वह इनको एक शान्त हृदय से सहन करते हुए भी हृदय की सुलगती अग्नि को प्रकट किये बिना रह ही नहीं

२

पाते। एक तूफ़ान शान्त ही नहीं हो पाता कि दूसरा घिर आता है। एक धारा में से दूसरी फूट निकलती है। अब तीसरी धारा विकास कालीन के नाम से वेदना के गेय बन जाने पर फूट निकलती है। इसके प्रमुख स्तम्भ श्री महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा एवं इलाचन्द्रजी आदि हैं। विशेषकर वर्मा त्रय ने इस बात का पूर्ण अध्ययन किया कि जीवन में विरह है, क्रन्दन है, अतृप्ति है और उसी की अभिव्यक्ति कर डाली है। यह गंगा की धारा तो अभी तक तीव्रतम गति में ही है कि कुछेक ऐसे कविगण भी हिन्दी-साहित्य में उतर आये हैं, जो मदिर-संपादन में व्यस्त हैं, अथवा जो अभी तक अपने साहित्यिक पथ को निर्दिष्ट नहीं बना पाये हैं। यही हमारे प्रयोगकालीन कवियों की काव्यधारा है।

ये इस धारा के कविगण अभी साहित्य के साहित्य प्रयोग करने में ही लगे हैं। इस काव्य धारा का भार उठाने के लिए नवयुवक सिपाहियों की नियुक्ति अनिवार्य होगई थी। इसी कारण इसका प्रतिनिधित्व बच्चन, अंचल, दिनकर, नरेन्द्र, तथा प्रेमी को ही सौंपा गया है। अंचल की वाणी में एक खुमारीपन है लेकिन हृदय में एक प्राणान्तक वेदना है, उसकी वेदना में एक स्वर है और स्वर में एक ध्वनि है। वह उसी ध्वनि से समस्त संसार को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। अञ्चल इसमें सन्देह नहीं प्रगति का अग्रदूत है। वह एक विद्रोही युग में विद्रोह और तूफ़ान की आग भड़काता चला आता है। हिन्दी के नवोदित

कवियों में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' बी० ए० का स्थान अत्यंत ही श्रेष्ठ है। भाषा में स्फूर्त्ति है, जीवन है, और एक ओज है। 'मधूलिका' और 'अपराजिता' दोनों में ही घनीभूततन्मयता का निखरा बिखरा स्वरूप भोले मानव के सामने बिखेरता हुआ युवक कवि अञ्चल जोवन के वैचित्र्य को लांघता हुआ आपत्तियों से लड़कर सफलतापूर्वक हमारे समक्ष एक प्रेमी के रूप में भी आ खड़ा होता है। वह कहता है:—

"सरकार तुम्हीं आये हो यौवन में कविता बनकर,
यौवन में बेहोशी बनकर, यौवन में क्रन्दन बनकर।",

अंचल में एक तीक्ष्ण पिपासा है; संसार इसी के कारण उसे लोकवादी कहने के लिए उद्यत है। वास्तव में उसकी उग्रता मानव की उग्रता से परे है। प्राणपीड़क वेदना और रोमन्टिसिज्म दोनों का जितना सुन्दर समन्वय हमें इस चौबीस वर्षीय युवक में मिलता है, इतना अन्यत्र दुष्कर ही है। इसमें संदेह नहीं अंचल का साधना-पूर्ण जीवन टीस और वेदना से लबालब है। वे एक झरने से भी तीव्र गति से संसार का पर्यालोचन करते अविरामित बढ़ते ही चले जाते हैं। उसके जीवन में ऐसा प्रतीत होता है, एक भयंकर संघर्ष है। अंचल का रोमान्टिसिज़्म यौवन की एक अनिवार्यता है। सम्भवतः उसकी प्रेयसी एक षोडसी है, जिसके प्रति वह सहसा कह उठता है:—

"छिन्न मस्ती सी तुम्हारी वह चली क्यों नील छाती !
वह विपुल निर्बन्ध तृष्णा तो कभी बुझने न आती।

लेकिन यह सब मधूलिका तक ही था; ऐसा संभव है कि शायद समय की प्रगति के साथ साथ अंचल ने भी अपने को बदला है। वह अब अपना उत्तरदायित्व कुछ कुछ समझने लगा है। वह कह उठता है:—

मैं नवयुग की हलचल लाया
मस्ती लाया यौवन लाया"

उसे तो शायद मानव के चीत्कार और शोषण की पुकार नित्य प्रति विह्वल, आकुल, और विक्षिप्त बनाती चली गई है। वही उसकी मस्ती है, एवं वही उसका विद्रोह है। वह कह उठता है:—

आज तो संघर्ष को मैं प्यार करता
आज मैं विद्रोह की हुँकार भरता,

अथवा वह एक स्थान पर कहता है:—

'इन बुझे आधे बुझों में दीप्ति का संस्कार भर भर
चाहता जैसे बना दूँ मैं इन्हें फिर आग का घर।'

यह अंचल की प्रेयसी उन्हें जीवन के प्रत्येक भाग में घुमा लाती है और आखिर फिर सौन्दर्य संकेत लिए नाच रही है।

अंचल जिस प्रकार पबलिक सर्विसकमीशन आफ़िस प्रयाग में एक क्लर्क हैं, उसी प्रकार श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' मधुबन में-सब रजिस्ट्रार हैं। 'रेणुका और हुँकार' उनकी काव्य-कृतियों के दो अत्यंत ही अनुपम संकलन हैं! वे यद्यपि एक

राष्ट्रवादी कवि हैं, तो भी जीवन की विकल अभिव्यंजना से वे बच नहीं पाये हैं। वे साहित्य में एक मौलिक शैली के प्रवर्तक हैं। उनकी कविता में एक ओज है, एक माधुर्य है, एवं एक अद्वितीय आकर्षण है। विहार प्रांत का उन्हें 'बच्चन' भी कहा जा रहा है। हुंकार में उनकी साम्यवाद की धारणा प्रबलतर होती गई है और कहीं कहीं तो उनकी प्रगतिशीलता अंचल, नरेन्द्र, और नवीन से भी आगे बढ़ गई है। प्रगतिशीलता का अंश यदि हमारी अन्तर्वेदना भी है, तो इसमें संदेह नहीं कि 'रेणुका' उसका जीता जागता उदाहरण है। वे एक वालुकामय तप्त रेगिस्तान में अपना कुँआ खोदने को आतुर हैं। उनके जीवन में पग पग पर कहीं विषाद है, तो कहीं आह्लाद की रश्मि भी दृष्टिगोचर हो पड़ती है। इसी से वे आपत्तियों के सामने कंधा डालना नहीं जानते। उनका कथन है:—

वालुओं का दाह मेरे ईश !
ओ सुमुखे दर्द की यह टीस !
सोचता विस्मित खड़ा मैं मौन
खोजती आई मुझे तुम कौन।

'हुकांर' में परिचयात्मक विवेचन से प्रत्यक्ष विदित हो जाता है कि दिनकर ने कुल तीस वसन्त देखे हैं। उसकी कविता यौवन का शृंगार, रूप की प्यास और जीवन का सौन्दर्य ही है। कवि में प्रगति का संदेश कूट कूट कर भरा है। वह संसार

की दशा को देख व्याकुल और आक्रान्त होकर संसार में प्रलय का अभिलाषी बन जाता है।

"नचे तीव्र गति भूमि कील पर अट्टहास कर उठें धराधर!
उपटें अनल फटे ज्वाला मुख गरजे उथल पुथल कर सागर,
गिरे दुर्ग जड़ता का ऐसा प्रलय बुलादो प्रलयंकारी"

संसार की तेज़ दौड़ में और प्रगति के अगम्य नाद में ही आभासित हो उठता श्री नरेन्द्र एम० ए० का व्यक्तित्व। आश्चर्य और विस्मय तो नहीं, किन्तु हाँ आनन्दपूर्ण गाथा अवश्य है कि बच्चन और नरेन्द्र जैसे अल्पायु के नवयुवक भी आज हमारी हिन्दी भाषा के कर्णधार बन रहे हैं।' 'प्रभात फेरी' और 'प्रवासी के गीत' ही नरेन्द्र हैं, यह कहना सत्यता से परे न होगा। वास्तव में यदि विचार किया जाय तो विदित होगा कि नरेन्द्र की राष्ट्रीयता उसको आज देवली से रिहाई मिल जाने पर भी खुर्जे में रोके है। यह एक मिथ्या भावना है कि 'नरेन्द्र पंत के संक्षिप्त संस्करण हैं' वैसे तो सभी प्रयोगकालीन कवियों का जीवन संघर्ष मय है, तो भी नरेन्द्र में इस अंश की बहुलता है। उन्होंने आपत्ति से खेलकर ही जाना है। उन्होंने वेदना के वशीभूत कई स्थानों पर अपना परिचय स्वयं ही दे डाला है। आपकी कविता के शब्द शब्द में विह्वलता, आकुलता, विकलता, आतुरता एवं व्याकुलता है। वे कह उठते हैं:—

मैं वह सपना हूँ जो आया हूँ,
सपना लेकर बन कर सपना,

लाया था अपना सुख सपना;
एक सत्य सीखा सपने में
सच है सपना अपना अपना।
मुझे समझना केवल सपना॥

उनकी कविता की दो प्रमुख विशेषताएँ और हैं—एक है उनकी प्रेम-व्यथा और दूसरा समाज का आर्त्तक्रन्दन। कण-फूल और शूल फूल इन्हीं से भरे हैं। विदा के अन्दर वे कह उठते हैं:—

आओ रानी विदा माँग लूँ,
चूम तरुण कलियों से लोचन,
आओ सजनि इन्हें समझा दूँ,
व्यर्थ न खोये नेह नीर कन!
तुम कह दोगी तो सहर्ष मैं
वन वन विचरूँगा वनचारी;
प्राण तुम्हारे आलिंगन सी
बन जायेगी संसृत सारी!

वैसे तो आज प्रयोगकालीन काव्यधारा में सभी नवोदित कवियों का उल्लेख किया जा सकता है, तो भी श्रीपद्मकांत मालवीय, श्रीगोपालशरण सिंह नेपाली, श्रीआरसीप्रसाद सिंह, श्रीचन्द्रप्रकाश वर्मा, श्रीहोमवती देवी, श्रीगंगाप्रसाद पांडेय एवं श्रीशिवमङ्गलसिंह सुमन की गणना आवश्यक हो जाती है। बात पूरी हुई जा रही है किन्तु श्रीहरिकृष्ण प्रेमी के विषय में

कहना शेष ही रह गया। जैसे नरेन्द्र या चन्द्र में प्रेम के कारण विह्वलता है, उसी प्रकार श्रीप्रेमीजी भी अधिकतर प्रेमानुभूति के ही कवि हैं। उनकी कविताओं में एक संघर्ष प्रवृति का प्रकाशन तो उनकी चारों पुस्तकें 'आंखों में' 'जादूगरनी' आदि सभी में कहीं न कहीं हो ही जाता है। उनका व्यक्तिगत जीवन आज भी एक संघर्ष-पूर्ण मरुस्थल की यात्रा के समान हो रहा है किन्तु प्रेमीजी किसी आशा के साथ बढ़े ही चले जा रहे हैं। ऐसा भी कहीं कहीं तो आभास सा मिलता है मानों श्रीहरि-कृष्णजी ने किसी प्रेयसी के प्रेम में असफल होजाने पर ही अपने नाम के पीछे 'प्रेमी' लगाया हो। वे एक निराशित प्रेम की तो मानो जीवित प्रतिमा ही हैं। उनकी वेदना कहीं-कहीं तो असह्य हो उठी है। वे किसी अतृप्त आकांक्षा के बूते पर ही शिक्षाओं के रूप व्यक्त हो गई हैं। 'चिनगारी' में वे कहते हैं:—

"अब घर द्वार नहीं है अपना अब सुख का अरमान नहीं है;
प्राणों में यौवन मद की अब छिड़ती मादक तान नहीं है।
यदि पथ में मैं भी बाधक हूँ तो मुझको भी जहर पिला दो;
ओ विद्रोही, अपने दिल पर ममता का भी भार न ला दो।
निर्मम बनकर आज विषमता
के नियमों में आग लगाओ,
पथिक अकेले ही इस पथ पर
चिन्ता क्या है बढ़ते जाओ।"

इस युग के प्रवर्तक हैं श्रीहरिवंशराय 'बच्चन'। बच्चन जी का

आरम्भ हालावादी कवि के रूप में हुआ, किन्तु आज वे जीवन के वेदनात्मक चित्रों को चित्रित कर क्षत विक्षत हो उठे हैं। आज हमारे साहित्य में जीवन की परिभाषा समझने का प्रलय जोरों पर है। कविगण साहित्य और काव्य की लेबोरेटरी में बैठे-बैठे 'एक्सपैरीमैन्ट्स' में लगे हैं। सामयिक उपकरण वेग-वान होते जा रहे हैं। यही इस प्रयोगकालीन काव्य-धारा की विशेषता है। श्रीबच्चन जी का साहित्य इस युग के निर्माण में कितना सहायक सिद्ध हुआ है, यह आगे विचारा जावेगा। किन्तु आशा यही है कि ये कवि गण भी आगे एक अत्यंत ही अनु-वर्तित भविष्य लिये हैं।

———

बच्चनजी का परिचय

मानव जीवन वैचित्र्य और विषमता से पूर्ण है। कहीं दुख है तो कहीं सुख, आह्लाद है तो कहीं विषाद। समय-समय पर मनुष्य के सम्मुख दुख-सुख कालदूत सा बन कर नाचता रहता है। मनुष्य परिस्थितियों के वश इधर से उधर मारा-मारा फिरता है। चिंता जीवन के साथ बँधकर आती है। क्या धनिक और क्या दीन, सभी किसी न किसी वस्तु की प्राप्ति की अभिलाषा से चिन्तित रहते हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व की महानता एवं लघुता पर उसके समस्त जीवन की उन्नति और अवनति अवलम्बित है। फिर मनुष्य की वास्तविक सफलता उसके निजी कर्तव्यों पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। साधारणतया यही देखने में आता है कि जो सम्पन्न घराने में पैदा होते हैं, वे तो उन्नति के सब साधन होते हुए भी अधिक उन्नति नहीं कर पाते। उनके स्थान पर वे लोग, जो जीवन में पग-पग पर एक द्वन्द्व युद्ध सा करते चलते हैं, वे वास्तव में जीवन में सफल हो जाते हैं। वे बिना किसी की सहायता के जीवन में असफलता की सीढ़ियों को लाँघते चले जाते हैं। अन्त में यही देखने में आता है कि आखिर सफलता भाग्य और वृद्धि सब उनके पीछे पीछे फिरते हैं। वे संसार के मान और अपमान की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं करते। यदि कभी वे अपने कार्यों में असफल

भी हो जाते हैं तो भी कंधा डालने के लिए कभी भी उद्यत नहीं होते। वे समस्त संसार को एक समर समझते हैं और निरन्तर लड़ते रहना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। भाग्य भी अंत में उनका सहगामी हो जाता है और संसार की समस्त आपत्तियाँ उनके लिए शून्य के समान हो जाती हैं। उनकी प्रतिभा उनके निज कर्तव्यों की ही देन होती है। वे किसी भी व्यक्ति की सहायता पर निर्भर रहना कायरता एवं भीरुता समझते हैं। वे जीवन की यात्रा में एक लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हैं। उनके पग-पग पर आनेवाली बाधायें एवं असफलताएँ ही उनको जीवन-पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती हैं। हरिवंश राय 'बच्चन' एम० ए० भी इसी प्रकार के व्यक्तियों में से हैं।

पूर्व इसके कि हम श्रीबच्चनजी को साहित्यिक दृष्टिकोण से देखना आरम्भ करें यह अनिवार्य हो जाता है कि हम उनके ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर भी दृष्टिपात करते चलें। श्रीबच्चन जी का दृष्टिकोण जीवन की क्षण-भंगुरता का पाठ पढ़ाता चला जाता है। बच्चनजी की विचार-धारा उन्हें जीवन की अस्थिरता के कारण प्रतिक्षण समाज के प्रति विद्रोही बना देखने के लिए उत्सुक रहती है। उनके जीवन में एक विषाद है; अनेक उलझी हुई गुत्थियाँ पड़ी प्रतीत होती हैं, जिनके सुलझाने में वे व्यस्त हैं। वास्तव में उनका सम्पूर्ण जीवन अब तक एक वैषम्य पूर्ण समर ही रहा है। उन्होंने कभी भी अपने दुख से विह्वल हो कंधा डालना नहीं जाना। उन्होंने तो जीवन से लड़ना सीखा है।

बात तो स्पष्टतया यह है कि बच्चन अनुभूति के कवि हैं। उनकी अनुभूति किसी अन्य ग्रन्थ से उत्पन्न होनेवाली नहीं। वह तो सीधी उनके हृदय से ही निकली है। वे किसी के कथन रूढ़िवाद अथवा ग्रन्थों में तो बँधे ही नहीं हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि "किसी के जीवन का क्रम निश्चित नहीं है। जीवन का क्रम निश्चित करने से ही जीवन बनता है।" यही भावना है जो इस नवयुवक कवि को जीवन-संग्राम में अग्रसर कर रही है वे इतना अवश्य कहते हैं कि मानव अपने आनेवाले युगों को उदाहरण छोड़ जाता है। अतएव उसे हिम्मत नहीं हारनी चाहिये। 'मनुष्य हाथ नहीं डालेगा—हथियार नहीं छोड़ेगा। विजय की आशा से लड़नेवाला वीर है, पर पराजय का निश्चय हो जाने पर भी जो लड़ता है, वह महावीर है। मनुष्य की मनुष्यता यही है :—

मानव का इतिहास रहेगा
कहीं पुकार पुकार कहेगा
निश्चय था गिर मर जायेगा किन्तु रहा चलना जीवन भर
तू क्यों बैठ गया है पथपर·

श्री बच्चन जी यौवन के कवि हैं; समाज उनपर दोषारोपण करने से चूकता नहीं। इसी से बच्चन जी का जीवन भी एक साधना पूर्ण कसौटी है। वे अभी एक युवक हैं, इस कारण उनके अन्तर में जो प्रगूढ़ वेदना है उसको वे सुगमता-पूर्वक व्यक्त करना जानते हैं। वे किसी बात को अपने काव्य को सरस एवं

हृदयग्राही बनाने के नाते नहीं लिखना जानते, अपितु उनके 'निशा-निमन्त्रण' में वे वास्तव में अपने जीवन की संध्या के आजाने का अनुभव करते हैं, एकान्त संगीत में वे अकेले रह गये हैं और इसी कारण अपने मन को धैर्य बंधाने और शांति देने के नाते जो कुछ वे अनायास ही अलाप उठते हैं, वही उनकी कविता हो उठती है। आकुल-अन्तर का तो नाम ही यह बताता है कि इसके कवि का अन्तर आकुल है। उससे भी आगे 'विकल-विश्व' में वह आकुलता केवल उसके व्यक्तिगत उर तक ही परिमित न रहकर उसके ओर के विश्व को भी विकल बना देती है।

श्री बच्चन जी का जन्म २७ नवम्बर १९०७ को प्रयाग के 'चक' मोहल्ले में हुआ। आपके पूजनीय पिता जी का नाम बाबू प्रताप नारायण जी था। आपके पिताजी और आपकी माताजी २५५ मुट्ठीगंज में सन् १९२६ से रहते थे। गत वर्ष आपके पिताजी का देहान्त सरक्यूलर रोड पर बच्चन जी के पास ही हुआ। आपके छोटे भाई श्री शालिग्राम 'रञ्जन' बी० ए० इलाहबाद बैंक कलकत्ते में नौकर हैं। रञ्जन जी भी कविताएं लिखते हैं। आप हिन्दी में लिखते हैं, उर्दू में लिखते हैं और कभी कभी अंग्रेजी में भी लिखते हैं। लेकिन उनका साहित्य केवल स्वान्त:सुखाय लिखी कविताओं से बना है। उनकी 'टीशाला' केवल मनोरञ्जन के लिए लिखी मधुशाला की बहुत ही सुन्दर पैरैडी है।

बच्चन जी का पूरा नाम श्री हरिवंशराय है। लेकिन आज उनका यह नाम तो विलुप्त सा होता जा रहा है। समस्त दुनिया उन्हें 'बच्चन' के नाम से ही जान गई है। यह नाम उनका घर का नाम है। पूज्या माता जी उनको अब तक 'बच्चा' या 'बच्चन' कहकर पुकारती हैं। बचपन तो कम से कम सोलह वर्ष की अवस्था तक मामूली सा ही रहता है। यही हाल 'बच्चन' जी का रहा। कई म्यूनिसिपल स्कूलों की आपने सैर की। उसके उपरान्त आपने कायस्थ पाठशाला इन्टर कालिज से सन् १९२५ में हाई स्कूल उत्तीर्ण कर ही डाला। इसके बाद ये गवर्नमेंन्ट कालिज में पढ़ने के लिए भेजे गये। वहाँ इनको अपने नाम के पीछे कुछ जोड़ने की सूझी और इसीलिये आपने अपने नाम के पीछे 'वर्मा' लगा लिया। कायस्थ कुल में पैदा होने के कारण निर्णय अच्छा ही था, लेकिन कुछ दिनों के बाद उन्होंने स्वयं ही लिखना छोड़ दिया। आखिर १९२७ में ये एफ० ए० भी उत्तीर्ण होगये। अब इनकी भर्ती प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई; वहाँ इन्होंने अपनी अद्वितीय विद्वत्ता का परिचय देते हुए १९२९ में प्रथम श्रेणी में बी० ए० उत्तीर्ण किया। अब आपने एम० ए० अंग्रेजी में अध्ययन ही किया था कि ये दण्डी यात्रा के लिए गान्धीवाद से प्रभावित होकर चल पड़े और अध्ययन बीच में ही कांग्रेस के आवेश में छोड़ देना पड़ा। गांधी आइट्स शान्ति पथ के अनुकरण कर्त्ता हैं। बच्चन जैसी विप्लवी प्रकृति के लिए उनके साथ अधिक दिन

रुक सकना दुर्लभ था। आखिर उनका साथ छोड़ इनका (क्रांतिकारियों) revolutionaries से पाला पड़ा।

यह तो इधर १९३४ तक चलता ही रहा। उधर १९२६ में ही आपकी शादी आपके हाई स्कूल उत्तीर्ण कर चुकने के अगले वर्ष ही कर दी गई। शादी के समय 'बच्चन' जी केवल उन्नीस वर्ष के ही थे, किन्तु उनकी धर्म पत्नी दिवंगता देवी श्यामा वास्तव में उनके लिए अत्यंत ही सहायक सिद्ध हुईं। जीवन की उथल पुथल के इन दिनों में जब कि आपको 'चांद' 'भविष्य' 'अभ्युदय', प्रयाग महिला विद्यापीठ में जगह-जगह टक्कर खाते ही बनता था, जो सहायता, धैर्य और शांति के साथ देवी श्यामा ने बच्चन जी की, उसको देख और सुन वास्तव में सराहते ही बनता है। यहाँ तक कि आज भी देहावसान के उपरान्त उनकी स्मृति ने ही बच्चनजी की काव्य-प्रेरणा में भी उनकी सहायता की। वे सच्ची और सीधी बात कहना जानती थीं। बच्चनजी की कविताओं पर प्यारी, मधुर और सत्यता-पूर्ण आलोचना वे संक्षिप्त में अत्यंत ही सुगमता-पूर्वक करना जानती थीं।

बच्चनजी के बुरे दिन फिरे ही थे और उन्हें अग्रवाल विद्यालय में हिन्दी अध्यापक का स्थान मिला ही था, कि सहसा उन्होंने यह अनुभव करना आरम्भ कर दिया कि उनकी आशाएँ इतनी जीवन विषमता के उपरान्त भी पूरी न हो पाईं। सहसा उन्हें रोगने आ दबाया। वे जीवन से निराशित से हो उठे और उन्होंने लिखा, इस ओर प्रिये तुम हो उस ओर न जाने क्या

होगा'। यह सब १९३५ की बात है। देवी श्यामा की सेवा से कैसे ही बच्चन तो चंगे हो गये किन्तु उसी दिन से श्यामा जी की दशा दिन प्रतिदिन बिगड़ती ही चली गई। आखिर १९३६ में वे बच्चन को संसार में अकेला ही छोड़कर एक लम्बी यात्रा के लिए चल बसीं। अब तो मन बहलाना और जीवन सुख से व्यतीत करना बच्चनजी जैसे भावुक व्यक्ति के लिए और भी दूभर होगया। यह संभव था कार्य में व्यस्त रहने से शायद बच्चन अपनी वेदना को भुला सकते। इसीलिए अध्ययन छोड़ देने के ठीक ८ साल उपरान्त १९३८ में बच्चन जी ने पुनः ३० वर्ष की अवस्था में यूनीवर्सिटी में अध्ययन आरम्भ कर दिया। और आपने एम० ए० भी उत्तीर्ण कर लिया किन्तु वे अब जीवन को किसी श्रेणी तक परिमित करना उत्तम समझते थे। उसी वर्ष बी०टी० के लिए काशी चले गये और वहाँ से १९४० में ट्रेंड होने के उपरान्त आप प्रयाग विश्व विद्यालय में रिसर्च स्कालर होगये। आपके ट्रेनिंग कालिज के विषय में यह कहा जाता है कि जब कभी आप विद्यार्थियों को अनुशासित नहीं कर पाते थे, तो उन्हें कविता सुनाने लगते थे और लड़के फिर अपने कार्य में दत्त चित्त हो जाते थे। इस वर्ष से अब आप अंग्रेजी विभाग में लेक्चरर हो गये हैं। इतने जीवन वैषम्य के उपरान्त किसी का व्यक्तित्व कितना सरल, प्रशंसनीय एवं प्रिय हो जायेगा, यह केवल विचारा ही जा सकता है।

आपकी कविता तो आपके बचपन से ही बन गई थी। कविता के साथ-साथ आपको संगीत और चित्रकला से भी विशेष प्रेम था। यही कारण है कि उनकी कविताओं में संगीत भी बहुत मधुर है। उनकी चित्रकला उनको केवल कोरे कागज पर सतरें खींचने के लिए ही प्रेरित नहीं करती अपितु वे उसके धारा-प्रवाह में मदमत्त होकर आप बीती को रंग देते हैं। उस रंग में एक ध्वनि है। उस ध्वनि में एक स्वर और संगीत है। उनकी प्रसिद्धि अधिकतर उनके 'रैसीटेशन' पर भी अवलम्बित है। बाल्यकाल से ही वे कविता की ओर विशेषतया आकर्षित होगये थे। कुछ कविताएं आपने आठवीं कक्षा में लिखीं थीं। किन्तु क्रमानुसार कविता लिखना उन्होंने १९३० से बी० ए० के उपरान्त आरम्भ किया। ज्यों-ज्यों आप पर जीवन के दुख टूटते गये आप उनको सहन करते गये। कविता उनकी हार्दिक अनुभूतियों का ही प्रकाशन रही है। और उनका आपत्ति काल अब तक अभ्यास का ही जीवन है। आज वे हिन्दी-साहित्य के प्रमुख कवियों में से है।

अब तक उनकी सात पुस्तकें—(१) तेरा हार, (२) उमर खैयाम की मधुशाला (३) मधुशाला (४) मधुबाला (५) मधुकलश (६) निशा निमन्त्रण और (७) एकान्त संगीत—प्रकाशित हो चुकी हैं और उनकी बहुत सी पुस्तकें, पद्य और गद्य दोनों की, अप्रकाशित हैं, तो भी बच्चन जी को केवल एक प्रसिद्ध हालावादी कवि के दृष्टिकोण से ही

देखा जा रहा है। कहीं-कहीं तो बच्चन एक मस्ती और विलास के साथ जीवन के दुःखों को भुला डालना चाहते हैं और कहीं वे एक साथ निराशा के गर्त में जा गिरते हैं। अधिक प्रसन्नता की बात तो यह है कि बच्चन जी की दो पुस्तकें— 'आकुल-अन्तर' और 'विकल-विश्व' जो कि उनके साहित्य-कोप में, ऐसा विश्वास किया जाता है, अमूल्य रत्न होंगे अब प्रकाशनार्थ तैयार हैं।

बच्चन जा को कविता क्या है? यह उनके निम्न गीत से स्पष्ट हो जाता है :—

मैंने दुर्दिन में गाया है।
दुर्दिन जिसके आगे रोता,
बन्दी सा नत मस्तक होता,
एक न एक समय दुनिया का एक-एक प्राणी आया है।
मैंने दुर्दिन में गाया है।
जीवन का क्या भेद बताऊँ
जगती का क्या मर्म जताऊँ?
किसी तरह रो-गा कर मैंने अपने मन को बहलाया है।
मैंने दुर्दिन में गाया है।

बचन जी के एक नहीं, दो नहीं बहुत से गीत इसी लक्ष्य को लेकर लिखे गये। उनकी निराशा उनकी श्यामा के देहावसान के बाद गूढ़तर होती चली गई है किन्तु अब बच्चन जी पुनः एक व्यवस्थित जीवन की ओर प्रयाण कर रहे हैं। उन्होंने अभी २४ जनवरी

को श्रीमती तेजकुमारी सूरी के साथ विवाह किया है। अब वे एक सांसारिक जीव से होते जा रहे हैं। आज उनसे दुनिया यह पूछने को आतुर है कि अब जब शादी भी होगई, नौकरी भी लग गई, माताजी भी पास हैं तो बच्चनजी अपने नेत्रों का किन कल्पित अश्रुओं से भिगोएँगे। कभी-कभी तो कुछ समालोचक यह भी कहने को उतावले हो जाते हैं, अब तो बच्चन केवल प्रेम-गीत (Love lyrics) ही लिख सकेंगे। ख़ैर—यह तो कह सकना कठिन है कि बच्चनजी का प्रस्थान किस निर्दिष्ट दिशा में होगा तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उनकी काव्यानुभूति उन्हें शान्त न बैठने देगी। वे कुछ न कुछ लिखते अवश्य ही रहेंगे। शायद अब निराशा के स्थान में आशा प्रधान हो जावे। यही उनकी विवाहोपरान्त लिखी दो कविताओं--नव वर्ष, और उद्बोधन से भी प्रगट होता है। देखें भविष्य क्या लाता है ?

———

मधुशाला और बाद के वच्चन

"वह हाला कर शान्त सके जो,
मेरे अन्तर की ज्वाला।
जिसमें मैं बिम्बित-प्रतिबिम्बित,
प्रति पल वह मेरा प्याला॥
'मधुशाला' वह नहीं जहाँ पर,
मदिरा बेची जाती है,
भेंट जहाँ मस्ती की मिलती
मेरी तो वह मधुशाला।"

मधुशाला और बाद के वचन

साहित्य-मानव जीवन का एक प्रतीक है और भाषा उसका माध्यम। संसार में प्रति पल घटने वाले परिवर्तन के साथ ही साथ प्रत्येक देश का साहित्य भी सादगी के साथ बदलता चला जाता है। प्राचीनता ही नवीनता की जननी है। प्रकृति की अधिकतर चीज़ें प्राचीन हैं। संसार इन दिनों तेज़ी से अपने क़दम उठाता चला आरहा है। मानव-जीवन की प्रत्येक शाखा में प्रगति का नाद है। मनुष्य अपनी बिखरी पिछड़ी बातों को छोड़कर आधुनिक-युग से होड़ लेने को उतारू है। दो क्षण को आँखें बन्द कर लेने के उपरान्त समस्त संसार हमें परिवर्तित सा प्रतीत होने लगता है। प्रलय के बादल हमारे सिरों पर घुमड़-घुमड़ कर आते से प्रतीत होते हैं। हम अपने दक़ियानूसी दायरे से निकल समस्त विश्व को अपना घर बना देखना चाहते हैं। हमारे साहित्यिक भी निरंतर उन्नति के पक्षपाती हैं। मानव जीवन के सभी साधनों का उत्कर्ष हमारी व्यक्तिगत साधनाओं पर ही अधिकतर निर्भर है। इसी कारण हम नित्य प्रति प्रयोगों में व्यस्त है। जिस प्रकार एक विज्ञानवेत्ता प्रयोगों द्वारा किसी सत्य पर पहुँचने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार हमारे आधुनिक साहित्यिक अपनी साधना के फल स्वरूप किसी न किसी सत्य तक पहुँचना चाहते हैं। इन

प्रयोगों में से बहुतों में हमें सफलता मिल चुकी है और कुछ में हम अभी आधा रास्ता ही तय कर पाये हैं। उन कुछ एक समस्याओं में ही साहित्य में वादों का स्थान भी एक है। हमारी सभ्यता, हमारी ततकालीन समस्याएँ एवं समाज हमारे साहित्य को भी रँगते चले जारहे हैं। समाजवाद, राष्ट्रीयतावाद, छायावाद, रहस्यवाद, हृदयवाद आदि अनेक वादों की प्रक्रिया के पथ पर ही हम पुनः एक अन्य विवादात्मक वाद से आकर टक्कर खाने लगते हैं! वह है हालावाद। हालावाद क्या बला है? यह कहा जाता है कि हालावाद के प्रवर्तक श्री हरिवंश राय 'बच्चन' एम० ए० हैं।

हालावाद का ज़ोर १९३५ से बँधा है और अब तक निरंतर प्रचलित है। लोगों ने हिन्दी-काव्य को छायावाद और रहस्यवाद की श्रेणी में से निकालकर राजनैतिक सर्व-प्रियता की ओर अग्रसर किया। परतंत्रता की बेड़ियों से मनुष्य के विचारों के पैर बँधे थे। सन् १९३० में इसकी एक तेज़ लहर आई जिसने स्वतन्त्रता की लगन में जेलों के अन्दर न मालूम कितने नवयुवकों को भर डाला। उनके शब्दों में अँगारे और पग-पग पर क्रान्ति का नाद था। यह नाद एक ध्वनि लिए था जो सहसा गेय हो उठती थी। यही थी राष्ट्रीयतावादी कविता। इस स्वतन्त्रता के विषम संघर्ष में कूदने वालों को समस्त आपत्तियों को आक्रान्त करना अनिवार्य था। जेलों में उनके साथ अन्याय किया जा रहा था। ऐसे युग में एक नवयुवक जिसकी अवस्था

संभवतः २२ वर्ष होगी और जो कि उसी वर्ष प्रयाग विश्व-विद्यालय से एम० ए० (प्रीवियस) पास कर रहा था एक कवि के रूप में अपनी कविताओं का सर्व प्रथम संग्रह 'तेरा हार' लेकर दण्डी यात्रा के लिए उठ खड़ा हुआ। इस युवक को इसके मित्र कहते थे 'बच्चन'। यह नवयुवक रक्ताभ मस्तक, छोटा क़द, बिखरे-बिखराये बालों वाला कोई पूर्वजन्मीय महान् आत्मा, विप्लव की प्रतिमूर्ति, क्रान्ति की गूँज लेकर उठा। उसकी कविता ने पढ़ने वालों के हृदयों को हिलाने का ठेका लिया था। उसके रूखे-सूखे बालों, और अस्त-व्यस्त चाल-ढाल में भी एक विद्रोह भाव टपकता था। कविता तो यह व्यक्ति बहुत दिनों से लिख रहा था किन्तु नियमित रूप से यह १९३० से ही साहित्यिक क्षेत्र में आया।

ऐसी एक प्रचलित धारणा है कि आज श्री बच्चन आधुनिक-हिन्दी-काव्य-धारा के एक प्रमुख कवि हैं। 'तेरा हार' बच्चन जो की सर्वप्रथम प्रकाशित कृति है। वैसे तो ऐसा विदित होता है कि उसी समय उन्होंने 'तेरी बांसुरी' 'मानसरोवर' 'कदम्ब' 'चाँदनी', और 'उपवन' अपनी कविताओं के अनेक संकलन किये थे, लेकिन सम्भवतः बच्चन जी कुछ काल के लिए जीवन संघर्ष में पड़कर इधर-उधर मारे-मारे फिरे। अतः वे अब तक प्रकाशित ही न हो सके। 'तेरा हार' का प्रकाशन सर्वप्रथम १९३० में हुआ। यद्यपि इसकी कविताओं में इतनी प्रौढ़ता तो नहीं है जो बच्चन की कविता में आज उपलब्ध है तो भी यह एक

कवि की राष्ट्रीय-भावनाओं को पूर्णतया व्यक्त करती हैं। देश-प्रेम की सच्ची भावना इस पुस्तक में सुव्यवस्थित रूप से मिलती है। 'तेरा हार' में बच्चन जी की काव्य-प्रतिभा का उद्भव है। इस कारण भी 'तेराहार' का महत्त्व बढ़ जाता है। विश्वमित्र, वीणा, प्रताप आदि पत्रों ने लिखा था कि यद्यपि कवि का नाम साहित्य में नया सा आरहा प्रतीत होता है तो भी कविताएँ सरस एवं सुन्दर हैं। बच्चन इसमें दुख-सुख को समदृष्टि स देखते हैं:—

"जीवन में दोनों आते हैं
मिट्टी के पल सोने के क्षण
जीवन से दोनों जाते हैं
पाने के पल खोने के क्षण"

अपनी 'बन्दी' नामक कविता में भी वे यही कहना और पूछना चाहते हैं कि बन्दी ने जब कोई कुविचार ही नहीं किया, कभी चोरी ही नहीं की तो उसे व्यर्थ में क्यों दूषित ठहराया जावे, क्यों सीकचों के अन्दर बन्द किया जावे? अपनी स्वतन्त्रता के संबध में सोचना कोई पाप तो नहीं फिर यह सब अराजकता कैसी? यही सब कविताएँ कवि के अन्तर में जो देश-प्रेम है उसका स्पष्टतम प्रकाशन कर देती है। मानवता के महाप्रस्थान का भी चित्र कहीं-कहीं सुन्दरता से चित्रित किया गया है।

लेकिन कवि का यश अधिकतर हालावाद पर ही अवलम्बित है। मधुशाला ने बच्चन जी को बना दिया। उनके व्यक्तिगत स्वरूप की रेखायें खींची तो 'मधुशाला' ने ही। 'मधुशाला' १९३३-३४ में लिखी गई और सर्वप्रथम १९३५ में पुस्तकाकार संसार के सामने आई। 'मधुशाला' में हाला-प्याला और मतवाला का ही उल्लेख प्रमुख है। इसको देखकर साहित्य संसार में अनेक भ्रान्तियां उत्पन्न होगईं। कुछ का कहना है कि बच्चन शराब पीते हैं और इसी कारण उन्होंने शराब पर ही कविता लिख मारी है। अन्य कहते हैं कि बच्चन का ध्येय प्रसिद्ध होना था। वे एक ऐसे विषय पर लिखना चाहते थे जिस पर संसार में किसी ने लिखा ही न हो। ये सब तो भ्रमात्मक धारणायें हैं। इसके अतिरिक्त इसमें सन्देह नहीं कि बच्चन जी से पहिले हाला-प्याला का श्रेय श्रीमती महादेवी वर्मा एवं पंडित पद्मकान्त जी मालवीय को है। दुनिया का यह भ्रम है। बच्चन की हाला वह दुनियावी शराब नहीं जिसे कि हरेक पीकर चलने वाला गली में नालियों में गिरता है। श्री बच्चन की हाला एक प्रतीक है जिसके द्वारा कवि अपने दुख को भुला डालना चाहता है। उन्होंने हाला-प्याला का उपकरण तो केवल राह की थकावट दूर करने के नाते ग्रहण कर लिया है। साथ ही साथ उनके हाला-प्याला, और साकी ने अपने प्रिय कल्पित पीने वाले को विश्व-संघर्ष में बढ़ते रहने के लिए भी प्रेरित किया है। उन उपादानों ने उनको अत्यंत सहायता पहुँचाई है। हिन्दी में मधु-

शाला एक सर्वथा नवीन प्रयास था। बहुमत से यही कहा जाता है कि:—

“सात वर्ष से हिन्दी में भी
खूब चली तो ‘मधुशाला’
ख़ुद पीकर वह आज पिलाने
चला शराबी मतवाला,
युग-युग से हिन्दी जिन्दा है
किन्तु न सुनने में आई
सब से पहिले कवि ‘बच्चन’ ने
लिख डाली क्यों ‘मधुशाला।”

(सिगरेट शाला से)

लेकिन यह तो एक व्यर्थ का सा दोषारोपण है। ‘मधुशाला’ से ‘बच्चन’ जी को सबसे अधिक ख्याति मिली है। आज भारत के कोने कोने में ‘मधुशाला’ और ‘बच्चन’ की धूम है। पूरी मधुशाला में १३५ रुबाइयाँ संकलित हैं। आधुनिक खड़ी बोली की कोई भी कविता पुस्तक इतनी लोकप्रिय आज तक नहीं हो सकी है। समाज उन्हें ‘मधुशाला के कवि’ के रूप में ही जानता है। उनकी मदिरा में एक हार्दिक अनुभूति का प्रकाशन है। मस्ती और विलास-प्रियता है। इसमें सन्देह नहीं कि बच्चन की हाला वह दुनियावी शराब कभी नहीं। वे कहते हैं:—

‘मृदु भावों के अंगूरों की
आज बना लाया हाला,

प्रियतम ! अपने ही हाथों से
आज पिलाऊँगा प्याला,
पहले भोग लगालूँ तेरा,
फिर प्रसाद जग पायेगा,
सबसे पहिले तेरा स्वागत
करती मेरी मधुशाला ।

वैसे तो हाला और 'मधुशाला' के प्रयोग का कारण कवि ने इसमें ही स्पष्ट कर दिया है, तो भी हमसे भी पहले 'सम्बोधन' के अन्दर वे लिखते हैं:—

"आज मदिरा लाया हूँ—मदिरा जिसे पीकर भविष्यत के भय भाग जाते हैं और भूतकाल के दारुण दुख दूर हो जाते हैं। जिसे पानकर मान अपमानों का ध्यान नहीं रह जाता है और गौरव का गर्व लुप्त हो जाता है; जिसे ढालकर मानव अपने जीवन की व्यथा, पीड़ा और कठिनता को कुछ भी नहीं समझता और जिसे चखकर मनुष्य श्रम, संकट, संताप सभी कुछ भूल जाता है। आह! जीवन की मदिरा जो हमें विवश होकर पीनी पड़ी है वह कितनी कड़ुवी है। यह मदिरा उस मदिरा के प्रभाव को उतार देगी, जीवन की दुःख-दायिनी चेतना को विस्मृत के गर्त में गिरायेगी तथा प्रबल दैव, दुर्बल काल निर्मम कर्म और निर्दय नियति के क्रूर, कठोर कुटिल आघातों से रक्षा करेगी...।'

बच्चन की मधुशाला के विविध स्वरूप हमें इन रुबाइयों के अन्तर्गत उपलब्ध हैं। उन्होंने यह जाना है कि मानव जीवन

तृषित है, आकुल एवं विह्वल है। इस बात को किस सुन्दरता के साथ अभिव्यक्त किया है ! यहाँ तक कि कहीं कहीं तो वे एक चम दार्शनिक बन गये हैं। जैसे एक स्थान पर मधुशाला की परिभाषा देते हुए कहते हैं:--

"भावुकता अंगूर लता से
खींच कल्पना की हाला,
कवि बनकर है साक़ी आया
भरकर कविता का प्याला,
कभी न कण भर खाली होगा,
लाख पिएँ दो लाख पिएँ !
पाठकगण हैं पीने वाले,
पुस्तक मेरी मधुशाला।"

एक अन्य धारणा है कि उनकी 'मधुशाला' ईश्वर प्राप्ति का ही एक साधन है। प्याले के शब्दों में कवि ने कितनी सुन्दरता से अपना परिचय दिया है:—

मिट्टी का तन मिट्टी का मन।
क्षण भर जीवन मेरा परिचय।

'मधुशाला' मनुष्यजीवन को अगम्य दार्शनिकता का ही प्रकटीकरण है। वह जीवन का अंतिम लक्ष्य है। निम्न रुबाई में वे इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि सबके जीवन का लक्ष्य वही ईश्वर प्राप्ति है ; किसी भी पथ से होकर चला जावे, मनुष्य उसी लक्ष्य तक पहुँचना चाहता है:—

'मदिरालय जाने को घर से
चलता है पीने वाला,
'किस पथ से जाऊँ?' असमंजस
में है वह भोला भाला,
अलग-अलग पथ बतलाते सब
पर मैं यह बतलाता हूँ—
'राह पकड़ तू एक चलाचल,
पा जायेगा मधुशाला।"

उनकी हाला के अन्दर समाज सुधार की भावना और साम्यवाद का भी समर्थन है; हाला, प्याला और मधुशाला, हाँ बच्चन का सब कुछ नहीं। वे जानते हैं कि जीवन क्षणिक है; उसमें वेदना की अभिव्यक्ति है। मानव विरह और व्याकुलता से सताये होने पर क्षण भंगुरता में निराशा के गीत गाने लगता है। 'मधुशाला' कहीं कहीं बच्चन जी का निजी व्यक्तिगत जीवन ही है। वे मधुशाला में कह उठते हैं:-

'कितनी थोड़ी सी यौवन की
हाला, हा मैं पी पाया।
बन्द हो गई कितनी जल्दी
मेरी जीवन मधुशाला!'

इस उच्छृंखल कवि के संघर्ष मय जीवन का इतिहास ही क्या हो सकता है? मस्ती और जीवन के प्रति विलासिता से भरा एक निर्दिष्ट दृष्टिकोण है। 'मृदुमिट्टी के हैं

बने हुए। 'प्याले टूटा ही करते हैं' में यह स्पष्ट है कि प्याले का अस्तित्व क्षणिक है। जिस प्रकार मिट्टी का प्याला हर समय टूट सकता है, उसी प्रकार मनुष्य जीवन अत्यंत क्षणिक है। वे एक दार्शनिकता के साथ जीवन के आनन्द को हाला समझे हैं। जिस प्रकार मदिरा बिखर पड़ने पर शोक छा जाता है इसी प्रकार जीवन का आनन्द जाते रहने पर नीरसता छा जाती है। वे कहते हैं:—

"धर्मग्रन्थ सब जला चुकी है
जिसके अन्तर की ज्वाला,
मंदिर, मस्जिद, गिरजे, सबको
तोड़ चुका जो मतवाला,
पंडित, मोमिन, पादरियों के
फंदो को जो काट चुका
कर सकती है आज उसी का
स्वागत मेरी मधुशाला।"

जीवन की क्षणभंगुरता का पाठ तो सम्भवत: बच्चन जी की रुबाई-रुबाई में भरा है। इसी जीवन की अस्थिरता ने जीवन के प्रति इन्हें निराश सा कर दिया है। इसके कारण वे समाज के प्रति विद्रोही हो उठे हैं। 'बच्चन' यह अवश्य जानते हैं कि जीवन, संसार और इसके समस्त पदार्थ नाशवान् हैं पर उनका दृढ़ विश्वास है कि जीवन के प्रति चतुर बनने की आवश्यकता तो बिलकुल भी नहीं है। उनका विचार है कि विश्वनियन्ता के

पादाम्बुज समस्तदु:खों और क्लेशों का निवारण कर सकते हैं। सम्भवत: इसी भावना को व्यक्त करने के हित वे कहते हैं:—

'बड़े-बड़े परिवार मिटे यों,
एक न हो रोने वाला,
हो जाए सुनसान महल वे
जहाँ थिरकती सुरबाला,
राज्य उलट जायें भूपों के
भाग्य सुलक्ष्मी हो जाए,
जमे रहेंगे पीने वाले
जगा करेगी मधुशाला।

इसी भाव को प्रकट करते हुए श्रीमती विद्यावती जी 'कोकिल' कह उठती हैं:—

"लग गई आग मयखाने में
पर हटे नहीं पीने वाले,
जल गए कलश पड़ गए और
दो दो बूंदों के लाले।"

ईश्वर सर्वव्यापी है। उसके भक्त उसे हर दिशा में देख पाते हैं। भक्त एक बेखुदी को लेकर मस्ती के साथ जिधर भी निगाह डालता है उधर ही उसे अपने प्रियतम की तस्वीर या अपना लक्ष्य दिखाई देने लगता है। उनका साक़ी अन्तर्यामी एवं विश्वव्यापी है। तभी वे कह उठते हैं:—

"किसी ओर मैं आँखे फेरूँ,
दिखलाई देती हाला,
किसी ओर मैं आँखें फेरूँ,
दिखलाई देता प्याला,
किसी ओर मैं देखूँ मुझको
दिखलाई देता साक़ी,
किसी ओर देखूँ दिखलाई
पड़ती मुझको मधुशाला"

अथवा

'पथिक बना मैं घूम रहा हूँ
सभी जगह मिलती हाला,
सभी जगह मिलता है साक़ी
सभी जगह मिलता प्याला,
मुझे ठहरने का हे मित्रो
कष्ट नहीं कुछ भी होता,
मिले न मंदिर, मिले न मस्जिद
मिल जाती है मधुशाला।"

'मधुशाला' ने बच्चन के नाम को घर-घर में पहुँचा दिया है। वह केवल एक तुकान्त मनोरंजन की सामग्री ही नहीं है। उसमें जीवन की सतत् साधना का फल है। वह जीवन में घटने वाली अनेक घटनाओं के चित्रों को रखने वाला एक सुन्दर 'एलबम' है। विश्वचक्र की लौह कठोरता हमें क्षत-विक्षत करती

चली जा रही है। हमारी सामाजिक कुरीतियों से बचने के लिए मधुशाला एक 'गाइड' है, निर्देशिका है। जीवन के थके-पिटे मुसाफिर के लिए मधुशाला एक आश्वासन है; और समाज संघर्ष के गीतों का वह एक सुन्दर संकलन है।

मुसल्मान औ हिन्दू हैं दो,
एक मगर उनका प्याला,
एक मगर उनका मदिरालय
एक मगर उनकी हाला,
दोनों रहते एक न जब तक
मन्दिर-मस्जिद में जाते,
लड़वाते हैं मस्जिद-मन्दिर,
मेल कराती मधुशाला।"

जिस वेदना से कवि आजीवन व्यथित, अशान्त और उन्मथित प्रतीत होता है और जिसका स्पष्ट प्रकाशन 'निशा-निमंत्रण' और 'एकान्तसंगीत' आदि में किया गया है उस वेदना की कसक मधुशाला में फिसल कर उसे और भी संगीतमय बना देती है:—

"क़िस्मत में था खाली घर,
खोज रहा था मैं प्याला!
ढूढ़ रहा था मैं मृग-नयनी,
क़िस्मत में थी मृगछाला!

किसने अपना भाग्य समझने
में मुझसा धोखा खाया?
क़िस्मत में था अवघट मरघट
ढूढ़ रहा था मधुशाला!"

अथवा--

"कुचल हसरतें कितनी अपनी,
हाय बना पाया हाला!
कितने अरमानों का करके
ख़ाक बना पाया प्याला!
पी, पीनेवाले चल देंगे
हाय, न कोई जानेगा—
कितने मन के महल ढहे तब
खड़ी हुई यह मधुशाला।'

बच्चन जी की 'मधुशाला' एक गूँज लिए हुए संसार में आई। इसकी कितनी ही पैरडियाँ भी निकल चुकी हैं। 'बच्चन' जी ने 'रञ्जन' जी लिखित 'टीशाला' की भूमिका में लिखा है।—

"मधुशाला' पर जितनी पैरडी लिखी गईं उतनी किसी आधुनिक हिन्दी काव्य पर नहीं लिखी गईं। 'विजयशाला' 'ताड़ीशाला', 'अफीम शाला', 'दही बड़े शाला', 'गजक शाला' 'चटशाला' आदि मैं सुन चुका हूँ, मुझे अचरज है कि किसी ने 'गोशाला' नहीं लिखी। इनमें कुछ अनुकरण काव्य की श्रेणी में आयेंगे, कुछ विचार विरोध अथवा व्यक्तिगत द्वेष के कारण

लिखी गई हैं। रञ्जन की 'टीशाला' विशुद्ध पैरडी है। इसका ध्येय केवल मनोविनोद है।"

बच्चन जी की कविता के दो विशेष गुण हैं। सर्व प्रथम उनका 'रैसीटेशन' और दूसरी है उनकी भाषा की सरलता। उनके स्वर में एक विचित्र आकर्षण है। बड़े बड़े कवि सम्मेलनों में बच्चन बड़े से बड़ा आदर पा चुके हैं। यही कारण है कि सुना जाता है, कि बच्चन जी अब प्रयाग से कहीं भी बाहर जाने के ५१) लेते हैं। वह सूखे बालों, और चीनी पलकों पर सुन्दर सुगठित शरीर वाला 'मधुशाला' की आकृति का जीवन जैसे ही कवि सम्मेलनों में पहुँचता है मधुशाला की आवाजें कसी जाने लगती हैं। उनकी भाषा की सरलता ने उन्हें और भी प्रिय बना दिया है।

'मधुशाला' ने बच्चन को सुविख्यात कर दिया किन्तु वास्तविक काव्य-प्रतिभा का निदर्शन 'मधुशाला' के बाद में आनेवाली उनकी 'मधुकलश' और 'मधुबाला' में है। इन दोनों पुस्तकों में विकास और प्रगति के अनुकरणकर्त्ता बन कर चले हैं। उनका विश्वास है कि संसार का प्रत्येक नियम विधाता रचित है। उसका यथोचित पालन मानव का परम कर्त्तव्य है। 'मधुशाला' और 'मधुबाला' में वे अन्धी दुनियाँ के पीछे आँख खींचकर भी चलने के लिए शायद उद्यत हो जायँ। किन्तु मधुकलश से उन्हें अपने पथ पर और अपने ऊपर कुछ विश्वास

होता जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक आश्वान्वित प्रयाण कर रहे हैं।

'मधुकलश' निशानिमंत्रण से पहले लिखी आत्मपरिचयात्मक कविताओं का संकलन है। इसकी कवितायें, 'कवि की वासना' 'कवि की निराशा' 'कवि का गीत' 'पथ-भ्रष्ट' 'लहरों का निमंत्रण' प्रसिद्धि प्राप्त कवितायें हैं। बच्चन जी ने इन कविताओं में मानवता का एक गीत गाया है। इन कविताओं के कवि को संसार वासनामय कह रहा है। और भी बहुत से दोष आरोपित किए गये हैं। उन सबका उत्तर कवि ने मधुकलश में देने का प्रयत्न किया है। विश्व कवि को पथ-भ्रष्ट तक कहने के लिए उद्यत है। जब कभी वेदना अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है और वासना कवि को अतृप्त एवं अविरामित कर देती है, तभी उसमें हाड़-मांस की भूख या सौन्दर्य की पिपासा की भी अभिव्यक्ति हो उठती है। वह इसे दबाने का प्रयत्न करता है। उस कटु आलोचना से बचने के लिये कवि कहने लगता है :—

"पार तम के दीख पड़ता
एक दीपक झिलमिलाता,
जा रहा उस ओर हूँ मैं
मत्त मधुमय गीत गाता,
इस कुपथ पर या सुपथ पर
मैं अकेला ही नहीं हूँ,

जानता हूँ क्यों जगत फिर
उँगलियां मुझ पर उठाता--
मौन रहकर इस लहर के
साथ संगी बह रहे हैं,

एक मेरी ही उँमगें
हो उठी हैं व्यक्त स्वर में।
हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नज़र में ॥"

इसमें संदेह नहीं कि कवि की आत्मा निर्भीक है। वह इस अन्धी दुनिया के सामने अपनी जीवन डायरी के समस्त कोरे पृष्ठ भाषा और भावना की स्याही से रंगता चला जा रहा है। जीवन की सत्यता को कदाचित् वह छिपा भी नहीं पाता। वह एक कदम बढ़ाना चाहता है कि दुनिया उस पर नुकता भी कस बैठती है। यह भी अवश्य है कि 'मधुकलश' कवि को कुछ-कुछ आत्म-बोध का भी विश्वास करा रहा है। वह कोई बग़ावत नहीं करना चाहता, वह तो दिली जज़बात का इज़हार ही कर रहा है। 'लहरों का निमन्त्रण' शीर्षक कविता में वे अपने जीवन-पथ को कुछ निर्दिष्ट नहीं करना चाहते। बल्कि लहरों पर भागना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि मानव की गति वेगवान हो यही अच्छा है। वे जीवन की चिरन्तन गति की ओर ही आँखें गड़ाये हैं:—

तीर पर कैसे सहूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण

पोत अगनित इन तरंगों
ने डुबाए मानता मैं।
पार भी पहुँचे बहुत से
बात यह भी जानता मैं।

किन्तु होता सत्य यदि यह
भी, सभी जलयान डूबे,
पार जाने की प्रतिज्ञा,
आज बरबस ठानता मैं।

डूबता मैं किन्तु उतराता।
सदा व्यक्तित्व मेरा।
हों युवक डूबे भले।
है कभी डूबा न यौवन।

तीर पर कैसे सहूँ मैं,
आज लहरों में निमन्त्रण !

ऐसा विदित होता है कि यह गीत कवि को बढ़ने के लिए उत्तेजित कर रहा है। सत्यता छिप नहीं पाती। जो वास्तविकता है वह प्रगट होकर ही रहती है। जीवन में वेदना है, खेद है, विषाद है, वैषम्य और वैचित्र्य है। इन्हीं सब के कारण विह्वल मानव की चक्की चलती है। जीवन की मशीन में जो चुर्चूँ है उसी को व्यक्तिगत भावनाओं के गेय हो जाने पर साहित्यिक

गीत कह उठते हैं। कवि बच्चन यह नहीं चाहते कि दुनिया उनके रोने को गीत कहने का साहस करे। इसके विपक्ष में वे कह उठते हैं—

"चुभ रहा था जो हृदय में
एक तीखा शूल बनकर,
विश्व के कर में पड़ा वह
कल्प तरु का फूल बनकर,
सीखता संसार अब है
ज्ञान का प्रिय पाठ जिससे,
प्राप्त वह मुझको हुई थी
एक भीषण भूल बन कर
था जगत का और मेरा
यदि कभी सम्बन्ध तो यह—
'विश्व को वरदान थे जो,
थे वही अभिशाप मेरे !
गीत कह इसको न दुनिया,
यह दुखों की माप मेरे !!'"

बच्चन जी ने प्रत्येक गीत में दुनिया को एक उत्तर देना चाहा है। दुनिया उन्हें जब वासना पूर्ण कहना चाहती है तो वे कहते हैं—

"कह रहा जग वासना में
हो रहा उद्गार मेरा।"

अथवा

"वृद्ध जग को खल रही
क्यों आज यह मेरी जवानी।"

'मधुबाला' के तो कई संस्करण छप चुके हैं। इसको भी पाठकों ने उत्सुकता के साथ पढ़ा। इसका प्रत्येक गीत एक नवीनता लिए है। उस नवीनता में सुस्पष्टता और प्रचुरता है। भाषा तो दिन प्रति दिन निखरती चली गई है। इसमें भी 'मधुकलश' के समान कवि का व्यक्तित्व विराजमान है। यह एक मौलिक शैली और भावों से गुँथी दार्शनिकता को लिए है। इसके प्रमुख गीत 'मालिक–मधुशाला', 'पथ का गीत', 'प्याला', 'सुराही', 'इसपार–उसपार', 'पांच पुकार', 'पगध्वनि' और 'आत्म परिचय' दुनिया की नजरों में बहुत ही चढ़ गए हैं। 'मधुबाला' का प्रथम संस्करण तो बच्चन की अनुवादित 'उमर खैयाम की रुबाइयाँ' के ही साइज़ का था। दूसरा संस्करण एक नवीन आकार लेकर आया। आत्म-परिचय में बच्चन जी ने अपना चित्र बहुत ही सुन्दरता से खींचा है। वे कहते हैं:—

"मैं निज रोदन में राग लिए फिरता हूँ,
शीतल वाणी में आग लिए फिरता हूँ;
हैं जिस पर भूपों के प्रासाद निछावर,
मैं वह खंडहर का भाग लिए फिरता हूँ!

× × ×

है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता,
मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूँ।

यह कहा जाता है कि बच्चन में प्रेम की मात्रा अधिक है। किन्तु जब बच्चन मानव हैं और मानवता के नाते यह जन्म सिद्ध आवश्यकता है फिर उनको उसके लिए दूषित क्यों ठहराया जावे। 'बच्चन' जी ने स्वयं ही लिखा है:—"वासना जब तीव्रतम थी बन गया था संयमी मैं।" 'बच्चन' दुनिया की आलोचना से घबड़ाते नहीं। वे कहते हैं:—

'मैं अर्थ बताता तृष्णा का दिन बीत रहे हैं जीवन के,
किस-किस के दूर करूँगा मैं संदेह यहाँ है जन-जन के।
भरदे प्याला दुनिया भूले भूले अपूर्णता जीवन की।
दीवानों ने जग में रहकर कब काम किये जगके मन के।
वह पीना भी कैसा जिससे रह जाये जग में जग का भय,
तेरा मेरा सम्बन्ध यही तू मदिरालय मैं तृपित हृदय,।

इसके उपरान्त कवि के जीवन का एक नवीन अध्याय आरम्भ होता है। 'निशानिमन्त्रण' और 'एकान्तसंगीत' एक विकल हृदय का ही क्रन्दन है। विश्वास तो यही है कि 'बच्चन' जी का भविष्य और भी आशातीत है। बच्चन इस युग के निर्माता हैं, कर्णधार हैं और आगामी वर्षों में भी यह भार उनके कंधों पर लदा ही रहेगा—

निशा निमन्त्रण

आधुनिक युग की कविता एक विषम समस्या होती चली जा रही है। कल्पना रूपी पक्षी के पंख न बँध सकने के कारण इस बीसवीं शताब्दी के नवयुवक साहित्यिकों ने साहित्य को बाद-गृह बना लिया है। बाह्य और अन्तर-प्रकृति में जो वैचित्र्य है मानव उसके अन्तर्गत एक समानता स्थापित करने को उत्सुक रहता है। वह इस विरोध को मिटाने का प्रयत्न करता है। कविता के संबंध में भिन्न-भिन्न धारणायें हैं और कवि की भिन्न भिन्न परिभाषाएँ दी जा रही हैं। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक आलोचक अपने आप स्वयं ही जीवन और कविता के अन्तर्गत एक अविच्छेदनीय सम्पर्क स्थापित कर रहा है। कोई कविता को जीवन की प्रकाशिका और कोई जीवन की आलोचना कहता है। कवि विश्व और विशेषत: युग का प्रतिनिधित्व करता है। अतएव कविता और समाज के बीच भी एक विशेष सौजन्य एवं सम्पर्क है। आज हमारे शासकों में अराजकता की प्रधानता है। हमारा समाज आतंक्रन्दन कर रहा है और हम स्वयं को इतना अव्यवस्थित पाते हैं कि हम सहसा ही वेदनात्मक राग अलापने लगते हैं। हमारा आज का नौजवान संभवत: इस धरा पर तो कहीं शांति ही नहीं पाता। वह तो 'क्षितिज के पार' अपने प्रियतम से मिलने को उतावला हो रहा है। उसकी कविता उसकी

'भग्न वीणा' के अस्फुट से तार हो चले हैं। उसके उर में एक कसक है; एक व्यथा है और है एक उलझन। यही सब बातें उसमें वेदना का समावेश कर देती हैं। वह परिस्थितियों से पूर्णतया जकड़ा हुआ है इसीलिए उसकी उत्पत्ति के साथ ही साथ उसकी प्राणान्तक सिहरन, थिरकन, और बोलचाल की भी उत्पत्ति हुई है।

देखने और विचारने का विषय तो यह है कि 'बच्चन' समाज की इस कुप्रथा से कहाँ तक प्रहारित हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि संसार 'मधुकलश' और 'मधुबाला' के आधार पर बच्चन को विलसवादी तक कहने के लिए उद्यत है। मानव-जीवन के अन्दर एक तृष्णा है, एक प्रेमानुभूति है एवं एक निर्धारित लक्ष्य है।

'निशा निमन्त्रण' इस कलाकार विद्रोही का छठवाँ चरण है। अब तक बच्चन जी का काव्य उनकी विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों का ही प्रतिमूर्ति रहा है। आपकी भाषा में उर्दू का पुट भी इसी का एक जीता-जागता उदाहरण है। यह कहना कि 'निशा-निमन्त्रण' एक सर्वथा ही नवीन प्रयाण है कुछ अधिक रुचि-कर न होगा। पथ तो वही है। वेदना और विद्रोह का सन्देश जो उन्होंने मधुपूजा द्वारा अपनी पूर्व कृतियों में दिया है वही 'निशानिमन्त्रण' में सौ धाराओं में फूट निकला है। ये गीत इसमें सन्देह नहीं कवि की प्रगाढ़ साधना के फलस्वरूप हमें

मिले हैं। 'मधुबाला' 'मधुकलश', 'मधुशाला' 'तेराहार' में तो कवि के समाज के प्रति विद्रोह का प्रदर्शन और प्रकाशन किसी सीमा तक परिमित था किन्तु इन गीतों में ऐसा प्रतीत होता है कि कवि अधीर हो उठा है। कवि की साधना में अब निराशा की झलक कुछ तीव्र होती जा रही है। मानव-जीवन में जो दुख अथवा क्लेश है उसकी प्रतिमूर्ति बनकर बच्चन जी आत्मोत्सर्ग, त्याग, आत्मबोध और दार्शनिकता के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते चले जाते हैं।

सत्य तो यह है कि 'निशानिमंत्रण' केवल अध्यात्म का ही आकुल प्रकटीकरण है; वह विश्व से ऊब चला है। उसके जीवन में एक सन्ध्या सी घिरती चली आ रही है। कतिपय आलोचकों के कथनानुसार यह बच्चन जी का एक नई ओर ही कूच कर उठना है। लेकिन संभवतः इस विचार से अधिक लोग सहमत न होंगे। उनके जीवन में जो संघर्ष रहा है उसको उनके हाला और प्याला ने उत्तेजित ही किया है। 'मधुकलश' में वे अपने उत्तरदायित्व को, ऐसा विदित होता है कुछ कुछ महसूस करने लगे हैं :—

जो साहस इन कविताओं में है, जो विप्लव और विद्रोह की रश्मि इन गीतों में से छनछन कर टपक रही है वही बच्चनजी के अधीर और असह्य एकाकीपन को 'निशानिमंत्रण' के एक एक गीत में प्रकाशित कर रही है। 'निशानिमंत्रण' इस कवि के १९३७-३८ में लिखे गये एक सौ गीतों का संग्रह है। गीतों की शैली आदि

पर विचार करते हुए हम यह अवश्य कह सकते हैं कि इस पुस्तक में बच्चन जी की काव्य-प्रणाली का एक नया युग आरम्भ होता है। यह गीत-संग्रह बच्चन के विह्वल अन्तर का प्रकाशन है। १९३६ में देवी श्यामा बच्चन को छोड़कर स्वर्ग को प्रस्थान कर गईं। ऐसी दशा में बच्चन जी को ऐसा प्रतीत होता है कि उनके जीवन की सन्ध्या घिर आई है। गीत सायंकाल के आने पर आरम्भ हुए हैं। इस संग्रह की सर्व प्रथम कविता ही इस बात का पुष्टीकरण करती है।

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है
हो जाय न पथ में रात कहीं ?
मंजिल भी तो है दूर नहीं।
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी-जल्दी चलता है।
मुझसे मिलने को कौन विकल
मैं होऊँ किसके हित चंचल
यह प्रश्न शिथिल करता पद को भरता उर में विह्वलता है।
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।

आज कवि अकेला है। उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने तक के लिए कोई नहीं है। इस कविता से यह तो प्रत्यक्ष हो जाता है कि कवि निशा का निमन्त्रण करने के लिए उद्यत है। उसके अतिरिक्त एक बात और है। 'मुझसे मिलने को कौन विकल' के अन्दर इस कविता का समस्त तत्व भर गया है। हिन्दी का यह कवि मानवता के गीत गा रहा है; वह आप बीती

को शब्दों और भाषा का जामा पहना कर अन्धी दुनिया के सामने फेंकता चला जा रहा है लेकिन दुनिया आज भी उसे पहचानने में असमर्थ है। सन्ध्या के बाद रात्रि घिर आती है और उस निशा की निस्तब्धता में भी वह राग अलापता ही जा रहा है। कहीं-कहीं वह अधीर हो उठता है। रात्रि घिर आई है। सन्ध्या बीत चली है, तभी वह कहने को उद्यत है।

है पावस की रात अँधेरी
विद्युत की है द्युति अम्बर में,
जुगनू की है ज्योति अधर में,
नभ-मंडल की सकल दिशायें तम की चादर ने है घेरी।
है पावस की रात अँधेरी।
मैंने अपने हास चपल से
होड़ कभी ली थी बादल से !
किन्तु गगन का गर्जन सुनकर आज धड़कती छाती मेरी
है पावस की रात अंधेरी।

आज यद्यपि कवि उस संघर्ष से भयभीत नहीं हुआ है तो भी आज उसके उर में एक धड़कन है। जगह जगह पर 'साथी' का प्रयोग इस बात की ओर संकेत करता है। कवि की जीवन-साथिन उससे बिछुड़ गई है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे पास 'निशानिमंत्रण' का समर्पण है। 'स्वर्गता देवी श्यामा को समर्पित' पुस्तक में उनसे आजीवन विलगता के कारण बच्चनजी के उर में

जो विह्वलता, विकलता एवं आकुलता है वही गेय बन जाने पर 'निशानिमन्त्रण' के गीत बन गई है। स्थान-स्थान पर पुस्तक में 'डर' 'भय' की ओर संकेत किया है। अन्धकार बढ़ता आता है। सहसा कह उठते हैं:—

'डर न लगे सुनसान सड़क पर,
इसीलिए कुछ ऊँचा स्वर कर,
विलग साथियों से हो कोई पथिक, सुनो, गाता आता है
अन्धकार बढ़ता जाता है।'

प्राय: बच्चन जी ने 'निशा-निमन्त्रण' में अपने को एक राहगीर अथवा भूला भटका पन्छी ही कहा है। एक स्थान पर वे देवी श्यामा की स्मृति में विह्वल हो उठते हैं। अपनी वेदना को दबाने का भरसक प्रयत्न करते हैं। किन्तु विफल हो जाने पर सहसा एक स्थान पर उनका हृदय रो उठता है:—

'यह न पानी से बुझेगी,
यह न पत्थर से दबेगी,
यह न शोलों से डरेगी, यह वियोगी की लगन है!
यह पपीहे की रटन है।'

'निशा निमन्त्रण' इसमें संदेह नहीं काव्य उत्कर्ष के सभी प्रधान गुणों से युक्त है। परिमार्जित तथा साफ सुथरी भाषा होने के अतिरिक्त इसकी कविता की एक मौलिक विशेषता है इसकी भाषा की सरलता, उसका स्वाभाविक प्रवाह एवं आकर्षक प्रभाव। सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवन में इस दार्शनिकता प्रकाशन यह

तो सभी हमें कवि के बहुत ही पास ला बैठाती हैं। पद, पंक्ति मात्रा, तुक आदि सब में ही एक स्वाभाविक आवरण है। अमा में चन्द्र के प्रकाश की भांति बच्चन जी के "निशा निमन्त्रण' के प्रत्येक गीत की तेरह पक्तियाँ उनकी एक मौलिक शैली स्थापित करती हैं। प्रत्येक गीत एक विचार को लेकर लिखा गया हैं और अन्त में उसी की पूर्ति की गई है। एक साधारण घटना से गीतों का आरम्भ होता है और फिर अन्त में तृतीय एवं अंतिम पद्यांश में कवि अपने व्यक्तिगत जीवन में उस जन साधारण के सत्य को ढूँढ़ निकालता है जैसे 'कोई पार नदी के गाता' में कोई मनुष्य गारहा है। दो पदांशों में उसी बात का वर्णन है। तीसरे में कवि सहसा अपने ऊपर उस गाने का प्रभाव मालुम करने लगता है :—

आज न जाने क्यों होता मन
सुनकर यह एकाकी गायन
सदा इसे मैं सुनता रहता, सदा उसे वह गाता रहता।
कोई पार नदी के गाता !

बच्चन ने अधिकतर प्रकृति के चित्रो में जो वेदना देखी है उसका प्रकाशन उसी तरह कर दिया है। वह किसी न किसी पथभ्रष्ट को सुपथ की ओर चला सकेगी ऐसी पूर्ण आशा है। 'निशानिमंत्रण' का प्रत्येक गीत हृदय को दूर तक छूता चला है। इतना ही नहीं कि इन गीतों ने कवि का एक कदम प्रगति के पथ पर और बढ़ा दिया है अपितु इसमे संदेह नही कि इसमें 'बच्चन'

बहुत ही ऊँचे उठ गये हैं। 'निशा निमन्त्रण' में इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं 'बच्चन' वेदना की चरम सीमा पर हैं। वे अपनी प्रेयसी 'श्यामा' की विरह वेदना को छिपा सकने में सर्वथा असमर्थ हैं। वे कह उठते हैं :--

'सत्य मिटा, सपना भी टूटा
संगिने छूटी, संगी छूटा,
कौन शेष रह गई आपदा जो तू मुझपर लाने वाली ?
री अशकुन बतलाने वाली।

विश्व अपने त्यौहार मनाये, दुनिया अपनी खुशी के नग्मे जोरों के साथ गाये या कोई अफ़सोस नाक मजार ही क्यों न अलापे इस नवयुवक कवि पर उसका कोई प्रभाव पड़ता ही नहीं। उसके जीवन में तो अंधकार घिर रहा है। वह तो अपनी ही वेदना पूर्ण पुस्तक से कुछ तान छेड़ कर जानता है। उसे दुनिया का बाह्य आकर्षण पदच्युत नहीं कर पाता। वह तो अपनी जीवन पुस्तक में जहाँ कहीं भी गहन अंधकार में कोई विशेषता देखता है, अलापने लगता है। :—

है यह पतझड़ की शाम, सखे!
नीलम-से पल्लव टूट गये,
मरकत से साथी छूट गये,
अटके फिर भी दो पीत पात जीवन डाली को थाम, सखे!
है यह पतझड़ की शाम सखे!

कवि के अन्तर में जो वेदनात्मक अभिव्यक्ति है उसका स्टोर तो कभी समाप्त ही नहीं होता। पग-पग पर उसके जीवन में संघर्ष एवं वेदना है। वह अब अपनी प्रेयसी से मिलन की समस्त आशाएँ खो चुका है। उसकी हृत्तंत्री में वेदना के तार निरन्तर झनझना रहे हैं। जिस संसार का वे निर्माण कर रहे हैं वह सृष्टि का एक ऐसा भाग है जहाँ रोना ही रोना और एकान्त निवास है। श्री बच्चन जी की वेदना में महादेवी जी के प्रियतम की प्रतीक्षा और फिर आने की आशा नहीं है। उसकी प्रेयसी तो उससे विलग होगई अब नहीं आती। उसी के कारण उसके उर में वेदना है, कसक है, विरह है, संघर्ष है, विकलता है एवं है विदग्धता। उसका संसार तो मानो लुट ही गया। वह यही बात दुनिया को बताने के लिए लिख गया है :—

'मेरा मंदिर था प्रतिमा थी
मन में पूजा की महिमा थी,
किंतु निरभ्र गगन से गिरकर वज्र गया कर सबका खंडन।
गिरजा से घंटे की टन टन।
जब ये पावन ध्वनियां आतीं,
शीश झुकाने दुनिया जाती,
अपने से पूछा करता मैं करूँ कहां मैं किसका पूजन?
गिरजा से घंटे की टन टन।

विरह व्यथा में तप-तप कर बच्चन जी अपने गीतों को गुनगुना कर आत्म बोध की ओर बढ़ते चल जाते हैं और अन्त

में उन्हीं गीतों द्वारा अपनी वेदना को भुला डालना चाहते हैं। लेकिन यही देखने में आता है कि यह वर्षों की पीड़ा उनके उर से निकल ही नहीं पाई है। उनके इस दुखान्त संघर्ष ने उन्हें जीवन के सत्यता के दिग्दर्शन करा दिये हैं। वह कहने लगते हैं—

सत्य कर अपने असंभव !
पर, ठहर नादान मानव !
हो रहा है साथ में तेरे बड़ा भारी प्रवञ्चन
अब निशा देती निमंत्रण।

'निशा निमंत्रण' आद्योपान्त पढ़ चुकने पर ऐसा विदित होता है कि कवि की प्राणान्तक वेदना अब उसे आत्मबोध की ओर प्रेरित कर रही है। उसकी जीवन-साथिन उससे बिछुड़ गई है; उस विरह में वेदना है; वेदना में रुदन है; और रुदन में मिलन के मनुहारों की आशा विलीन हो जाती है। अब तो वह काल पर विश्वास ही करने के लिए उद्यत नहीं। वह कहने लगता है :--

'भूत केवल जल्पना है,
औ भविष्यत कल्पना है,
वर्तमान लकीर भ्रम की ' और है चौथी शरण भी ?
स्वप्न भी छल जागरण भी।"

गीत भी गाना चाहते हैं तो केवल मन बहलाने के नाते। कवि के जीवन में अब निराशा-घटा गहन ही होती जा रही है।

उसको भुला सकना तो सर्वथा असंभव है। वह दुनियां को धोखे में नहीं रखना चाहता। अतएव यह भी बता देना अनिवार्य समझता है कि वह क्यों जाता है—

काल प्रहारों से उच्छृङ्खल
जीवन की लड़ियाँ विशृङ्खल,
इन्हें जोड़ने को, आ, अपने गीतों की हम गाँठ लगालें,
आ सोने से पहले गा लें।"

'निशा-निमंत्रण' के कई गीतों में एक ज्ञान पूर्ण दृढ़ता है। कवि को कुछ-कुछ विश्वास और आत्म प्रेरणा होती जारही है जिसके बल पर वह यह सब कुछ कह डालने के लिए उद्यत है। वह भी वेदान्तिक दार्शनिकता का अगम प्रचारक बन कर दुनिया को उन्नति के सोपान की ओर अग्रसर करने के लिए उतावला हो उठता है। वाह्य भिन्नताओं के साथ ही साथ कवि की ध्वनि भी हमारे कानों में गूँजती चली जाती है। प्रकृति के समस्त पदार्थ उसे एक पाठ पढ़ा रहे हैं। वह जीवन-समर के लिए अधिक उद्यत होता चला जा रहा है। वैसे तो हम सभी चन्द्रमा को नित्य प्रति ही देखते हैं लेकिन उसकी महत्ता बच्चन जी की दृष्टि में कहीं अधिक है। वे कहते हैं—

मुझसे चांद कहा करता है—
चोट कड़ी है काल प्रबल की,
उसकी मुस्कानों से हल्की
राज महल कितने सपनों का पल में नित्य ढहा करता है।

मुझसे चाँद कहा करता है—
तू तो है लघु मानव केवल,
पृथ्वीतल का वासी निर्बल
तारों का असमर्थ अश्रु भी नभ से नित्य बहा करता है।
मुझसे चाँद कहा करता है—
तू अपने दुख में चिल्लाता,
आँखों देखी बात बताता,
तेरे दुख से कहीं कठिन दुख यह जग मौन सहा करता है।
मुझसे चाँद कहा करता है—

यदि हम सत्य से परे नहीं चले जाते तो हमें यह कहते संदेह नहीं होना चाहिये कि बच्चन जी ने 'निशा-निमन्त्रण' के अन्दर अपने ३१ बसन्तों का इतिहास लिख डाला है। इसका महत्व हमारे साहित्य के दृष्टिकोण से अत्यंत ही गूढ़ है। हमें विदित है कि मानवता ही जीवन है। जीवन ही समाज है। और समाज एवं राष्ट्र का एक निजी साहित्य होता है। बच्चन के गीत सांझ को शुरू होकर उषा के आने तक समाप्त हो गये हैं। इस प्रकार उनमें एक स्वाभाविक सा तारतम्य है। अपने मन को समझाने के लिए ही कवि ने यह सब लिखा है। कवि जीवन के विषादात्मक क्षेत्र से विह्वल होकर दिवाली और होली की भी चिन्ता नहीं करता। संसार तो वैचित्र्य और वैषम्य से परे है। वह दुनिया की दीवाली देखकर कह उठता है—

"फैल गई दीपों की माला,
मंदिर-मंदिर में उजियाला,
किन्तु हमारे घर का देखो, दर काला दीवारें काली।
साथी घर-घर आज दिवाली।

या होली में वह अकेला होने के कारण पुनः अपने आँसुओं से ही होली खेलकर रह जाना चाहता है:—

"उर से कुछ उच्छ्वास उठेंगे,
चिर भूखे भुज-पाश उठेंगे,
कंठों में आ रुक जायेगी मेरे करुण प्रणय की बोली!
विश्व मनाएगा कल होली"

संसार के लिए आने वाला वर्ष नई-नई आशायें लाता है किन्तु 'निशा निमन्त्रण' के कवि के अश्रुमय जीवन में वही विशृंखलता है। अपने अस्तित्व को भी वह घृणित दृष्टि से देखने लगता है। वह जीवन के पथ को निर्दिष्ट नहीं कर पाया ऐसा प्रतीत होता है। नये वर्ष के आने पर वह कहने लगता है—

'हुई बहुत दिन खेल मिचौनी,
बात यही थी निश्चित होनी,
आओ, सदा सुखी रहने का जीवन में आदर्श बनालें!
आओ, नूतन वर्ष मनालें!"

यह समस्त संसार मानों दुख का ही नीड़ हो, मानो इसमें तिमिर ही भरा हो और कहीं आशा का पता तक न हो ऐसा

प्रतीत होता है। 'निशा निमंत्रण' का कवि निरन्तर अपनी स्वर्गता संगिनी को अपनी व्यथा सुनाता ही पाया जाता है। उसके मानस-मंदिर में एक व्यथा है, जो कि कभी-कभी अविराम गति से समस्त संसार को छूती चली जाती है। वियोग में एक विचित्र विह्वलता है, प्रेम कितना व्यापक और विपद, कितना तीव्र है यह तो निशा निमंत्रण का प्रत्येक गीत ही बताता है। उसके उस तिमिर में भी उसे एक प्रकाश दिखाई पड़ता है। वह उसी से अब अपने मन को बहलाना चाहता है।

इसी वेदना के छींटे श्री बच्चन जी जगह जगह पर देते हैं। कवि की वेदना किसी एक समय की उपज नहीं। वह तो उसके समस्त दुःखान्त जीवन का अन्वेषण है। बच्चन जी कहीं-कहीं तो जीवन के सत्य को उसके नग्न रूप में अत्यंत ही सुन्दर रंगों द्वारा चित्रित कर जाते हैं। श्रीमती महादेवी का चितेरा ब्रश कुछ तेजी से उठ जाता है जिसके कारण उनकी कल्पना की उड़ान पारलौकिक 'सील' हो जाती है और संसार उसे छाया-वाद या रहस्यवाद के नाम से सम्बोधित करने लगता है। लेकिन बच्चन की कविता को तो किसी वाद में बाँधा ही नहीं जा सकता। उसका उद्भव तो विकल कवि का आकुल अन्तर ही है। वह उसकी आत्म प्रेरणा की ही झङ्कार है जो समस्त जगती में व्यापक है। उसकी चित्रकला ने बन्धन अभी तक सीखा ही नहीं है। जो दुःख उनके व्यक्तिगत जीवन में भी है उसके

लिए वे किसी अन्य व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराते। वे कहते हैं—

"मिलता था बेमोल मुझे सुख,
पर मैंने उससे फेरा मुख,
मैं खरीद बैठा पीड़ा को यौवन के चिर संचित धन से!
मैंने खेल किया जीवन से!"

वे विश्व के हाहाकार को देख कर विचलित नहीं हो जाते अपितु उसका अत्यन्त ही सुन्दर समर्थन करते हैं। उनका कहना है--

आह निकल मुँह से जाती है,
मानव की ही तो छाती है;
लाज नहीं मुझको देवों में यदि मैं दुर्बल कहलाता हूँ।
ऐसे मैं मन बहलाता हूं।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि बच्चन जी में केवल वेदना ही हो। वे वेदना की गोद में पले हैं, उन्होंने यौवन की देहली पर खड़े-खड़े भाग्य के प्रहारों से खेलना सीखा है और उनके सम्पूर्ण जीवन में एक वैषम्य है, एक संघर्ष है एवं है एक विषाद। किन्तु जैसे वे आगे बढ़ते चले गये हैं वे सत्य के निकट पहुँचते गये हैं। 'संसार' क्या है? उसने उनके साथ कैसा व्यवहार किया है, इसका प्रकाशन वे अपनी निम्न कविता में करते हैं--

'आज मुझसे दूर दुनिया !
भावनाओं से विनिर्मित,
कल्पनाओं से सुसज्जित,
कर चुकी मेरे हृदय का स्वप्न चकनाचूर दुनिया।
आज मुझसे दूर दुनिया।

'बात पिछली भूल जाओ,
दूसरी नगरी बसाओ--
प्रेमियों के प्रति रही है, हाय, कितनी क्रूर दुनिया।
आज मुझसे दूर दुनिया।

वह समझ मुझको न पाती,
और मेरा दिल जलाती,
है चिता की राख कर में, माँगती सिंदूर दुनिया।
आज मुझसे दूर दुनिया।

प्रत्येक कार्य की सीमा होती है, प्रकाशन भी किसी न किसी स्थान पर परिमित ही हो जाता है। 'बच्चन' ने स्वयं ही लिखा है—

कहने की सीमा होती है,
सहने की सीमा होती है।

कुछ मेरे भी वश में, मेरा कुछ सोच-समझ अपमान करो।

जिस नवयुवक के १०० वाण वेदना का क्लोरोफार्म छोड़कर हमें क्षत-विक्षित से करते चले गये हैं उसी के अंतिम कुछ चरण

हमें इन प्रहारों के प्रति सहन शीलता का संवाद सुनाते हैं उनमें एक आशा की झलक है और जीवन-संघर्ष में वीरता पूर्वक लड़ते रहने का आदेश है। वे कहते हैं--

मानव का इतिहास रहेगा
कहीं, पुकार पुकार कहेगा—
निश्चय था गिर मर जायेगा किन्तु रहा चलता जीवन भर
तू क्यों बैठ गया है पथ पर ?

अथवा—

" हम क्या हैं जगती के सर में !
जगती क्या, संसृति सागर में !
एक प्रबल धारा में हमको लघु तिनके सा बहना होगा।
साथी सब कुछ सहना होगा।

निःसंदेह कवि के हृदय की अतृप्ति निन्तर बढ़ती ही चली जा रही है तो भी अब वह इस बात को समझने सा लगा विदित होता है कि विरह और मिलन, विषाद और आह्लाद अश्रु एवं हास्य ये मानव जीवन की अनिवार्यताएँ हैं और नियति के अटल नियम हैं। अतएव उनसे विरोध करना मानव की मूर्खता है। अब वह 'साथी, साथ न देगा दुख,' 'साथी हमें अलग होना है,' 'जय हो हे संसार तुम्हारी,' 'जाओ कल्पित मन के साथी' अथवा 'विश्व को उपहार मेरा' के अन्तर्गत समाज के अविच्छेदनीय नियमों के विपक्ष में संग्राम नहीं छेड़ना चाहते।

कुछ भी हो इसमें संदेह नहीं कि 'बच्चन' मानवता की एक जीते जागते उदाहरण हैं। उन्होंने जीवन से खेल किया; जीवन से लड़कर उसकी समस्त आपत्तियों को पहचाना है। 'निशा निमन्त्रण' उसके जीवन के संघर्ष काल का एक सुव्यवस्थित इतिहास है। निःसंदेह इस पुस्तक ने 'बच्चन' जी को एक बहुत ही उच्च स्थान दिला कर उन्हें अमर बना दिया है।

एकान्त संगीत

'एकान्त संगीत' बच्चन जी का अन्तिम प्रकाशित काव्य संग्रह है। 'निशा निमन्त्रण' में जिस वेदना को यह नवयुवक उच्छृंखल कवि पोषित कर रहा था वही 'एकान्त-संगीत' के सौ गीतों में एक नई फबन, नया अन्दाज एवं नई गठन लिए संसार के समक्ष आया है। बच्चन जी के 'निशा निमन्त्रण' में उनकी दार्शनिक अभिरुचि के कारण प्रकृति प्रेम एक विशिष्ट प्रकार से व्यक्त हुआ है। वर्ड्सवर्थ की प्रकृति देवी जिस प्रकार उसे शिक्षाएँ देती चली जाती है उसी प्रकार बच्चन जी निशा-निमन्त्रण के प्रत्येक गीत में प्रकृति की ओट में खड़े-खड़े मानव जीवन में जो वेदना उल्लास और असफलता है उसका पूर्ण परिचय दे देते हैं। प्रसाद जी के मतानुसार जहाँ छोटी छोटी भावनाएँ एक धारा प्रवाह में केन्द्रित हो उठती हैं उसे गीत काव्य कहते हैं। इसी परिभाषा को विचार में रख कर यदि हम बच्चन जी के 'एकान्त-संगीत' के साहित्यिक अन्वेषण की ओर प्रयाण करें तो हमें यह विदित हो जाता है कि जहाँ अन्त: सौन्दर्य व्यक्त करना होता है वहाँ प्रबन्ध काव्य की समस्त शक्तियाँ असफल हो उठती हैं और वहाँ केवल अन्त:करण की अनुभूतियों का सफल प्रकाशन गीत काव्य ही कर पाता है। वैसे तो 'बच्चन' इस युग के साथ ही

दौड़ रहे हैं तो भी उनकी चाल अत्यंत तीव्र है। उनके गीतों के अन्दर श्रीमती महादेवी, डा० रामकुमार वर्मा और श्री पंत जी का रहस्य या छायावाद तो नहीं किन्तु उनकी भाषा, उनका प्रवाह और उनका यथोचित प्रकटीकरण सब ही हमें आकर्षित कर लेता है।

देवी श्यामा सदृश देवी से विलग होने पर उच्छृंखल 'बच्चन' के जीवन का तो मानों समस्त क्रम ही अस्तव्यस्त हो गया। 'निशानिमन्त्रण' के सौ गीत भी उनके विह्वल उर को कोई आश्वासन न दे सके। अन्त में १९३८ और १९३९ में भी वही वेदनात्मक जीवन-क्रम प्रचलित रहा। निशा निमन्त्रण के अंतिम गीतों में बच्चन जी ने अपने साथी की अभिव्यञ्जना कल्पित सिद्ध कर दी है। 'एकान्त संगीत' के गीत में वे उस साथी की कल्पना भी नहीं कर पाते। किन्तु उसी आवेग के साथ वे अपने हृदय को उगलते चले गये हैं। ये गीत भी वास्तव में उनके हृत्तंत्री के विकृत तारों की झंकृत सी ध्वनि है। इस संग्रह के समय तो वे एकाकी ही रहे हैं। विधि भी आपके प्रति कठोर व्यवहार करे बिना रहा नहीं। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि इस संग्रह में भावों की व्यापकता अधिक बढ़ गई है। संभवतः उनके हृदय के स्रोत में जल-प्लावन हो रहा है जिसके कारण वे कहीं तीव्र और कहीं मन्द पड़ गये हैं। वास्तव में यदि 'बच्चन' की कविता को देखा जाये और उनसे यह प्रश्न किया जावे कि आपकी कविता क्या है?

आपने 'एकान्त संगीत' क्यों लिखा तो शायद वे वर्फोड चर्च पर अंकित एक पद्यांश में ही इस दुरूह प्रश्न का उत्तर दे सकें।

'Love made me poet
And this I writt
My herte did doe yt,
And not my wit.

'एकान्त-संगीत के समस्त गीत भी बच्चन जी के व्यथित हृदय से निकले कुछ आत्म-परिचय और आत्म इतिहास के अंश कहे जा सकें यह अति संभव है। यदि उन्होंने कहीं व्यक्तिगत सिद्धान्तों का प्रचार किया होता तो विश्व उन्हें घृणा की दृष्टि से ही देखता। किन्तु उनकी तो वेदना-प्रधान अनुभूतियाँ जगती के समक्ष आते-आते गीत बन गई हैं। वेदना आधुनिक हिन्दी काव्य-धारा की ही एक देन है। इसलिए बच्चन जी के किसी प्रकार भी अपने वातावरण के प्रतिकूल जाने का तो प्रश्न ही नहीं आया किन्तु तो भी वे एक नवीन सजीवता, गहनता एवं भावुकता लेकर हिन्दी साहित्य में प्रवेश कर रहे हैं। जहाँ तक कल्पना का प्रश्न है निसंदेह बच्चन जी को बेतुकी उड़ान तो पसन्द नहीं तो भी ठोस अनिवार्य कल्पना का उनमें बाहुल्य है। वही अंश उनकी चितेरी प्रवृत्ति का प्रकाशन करता और उनकी काव्यानुभूतियों को स्थान-स्थान पर रँगता चला जाता है। यह जो 'एकान्त संगीत' की नई गीत-माला बच्चन जी ने हमें

दी है उससे यह प्रत्यक्ष है कि प्रगतिवादी बच्चन निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। उनकी काव्य-धारा में असीम वेग है, और उनके अपने प्रयोगों में अदम्य उत्साह एवं अनुपम धैर्य है।

संसार यह न समझे कि बच्चन जी का 'एकान्त संगीत' उनका एक नवीनतम प्रयोग है। कुछ आलोचक तो आज भी यह कहने को उतावले हैं कि बच्चन जी के शेष गीतों का संग्रह ही 'एकान्त-संगीत' है। वे तो 'निशानिमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' को सर्वथा एक ही प्रयोग समझे हैं। यह उनकी भूल है। 'एकान्त-संगीत' की तुक मात्रा शैली सच में एक विचित्रता है। यहाँ तक कि ये संगीत भी इकट्ठे एक रूपता को लेकर ही नहीं लिखे गये हैं। कहा जा सकता है कि 'एकान्त संगीत' वाली वेदना ही प्रबलतर होती चली गई है। 'एकान्त संगीत' की कमान से निकला पहला तार ही हमें छूता चला जाता है—

अब मत मेरा निर्माण करो
इस चक्की पर खाते चक्कर
मेरा तन मन जीवन जर्जर,
हे कुंभकार, मेरी मिट्टी को और न अब हैरान करो!
अब मत मेरा निर्माण करो।

कहने की सीमा होती है,
सहने की सीमा होती है,

कुछ मेरे भी वश में मेरा कुछ सोच समझ अपमान करो।
अब मत मेरा निर्माण करो।

यद्यपि 'निशा निमंत्रण' और 'एकान्त संगीत' की भावधारा में एक गहन सामञ्जस्य और समता है तदपि बच्चन जी के 'एकान्त संगीत' के प्रत्येक गीत में जो सिहरन है, थिरकन है, व्यथा है, पीड़ा है, आकुलता है, विह्वलता है वह 'निशानिमंत्रण' से भिन्न प्रतीत होती है। 'निशा निमंत्रण' के निम्न गीत में कवि ने अपने साथी को भी विदा दे दी—

"जाओ कल्पित साथी मन के!
जब नयनों में सूनापन था
जर्जर तन था, निर्मल मन था
तब तुम ही अवलम्ब हुए थे मेरे एकाकी जीवन के।
जाओ कल्पित साथी मन के।

अत: आज तो एकाकी बच्चन केवल एकाकीपन का ही अनुभव कर सकता है। यह वही एकाकीपन है जिसका सर्व-प्रथम प्रकाशन 'निशानिमत्रण' के पहले गीत में हुआ था। वहाँ वे कहते हैं :—

"मुझसे मिलने को कौन विकल,
मैं होऊँ किसके हित चञ्चल
यह प्रश्न शिथिल करता पद को भरता उर में विह्वलता है,
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है"

किन्तु उस एकाकीपन की चरम सीमा हो गई है जब वास्तविक साथी का तो कहना ही क्या वे अपने मन के कल्पित साथी को भी गँवा देते हैं। जो संध्या रात्रि और प्रात: 'बच्चन' जी की निराशा की मात्रा को तम की मात्रानुसार व्यक्त कर रहा था वह भी अब एकान्त संगीत में दिखाई नहीं देता। स्पष्ट कारण तो यह है कि जब हम वेदना की चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तो वहाँ हम एक अत्यंत ही अव्यवस्थित एवं अस्तव्यस्त परिस्थिति में पड़ जाते हैं। उस दशा में हमारी स्पर्श शक्ति, दृष्टि और अन्य सभी इन्द्रियाँ भी शिथिल पड़ जाती हैं। यही बात 'बच्चन' जी की कविता में भी है। 'एकान्त संगीत' में वे अधीर हो उठे हैं। उस अवस्था में उनके चारों ओर का वातावरण भी उनकी व्यक्त एवं निर्मित अनुभूतियों को परिणत नहीं कर पाता। प्रसाद जी जिस घनीभूत पीड़ा के संबंध में कहते हैं—

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई।

वही दशा 'बच्चन' जी की है। उनकी वेदना असीम हो उठती है, जब वे कहते हैं :—

खिड़की से झाँक रहे तारे।
जलता है कोई दीप नहीं
कोई भी आज समीप नहीं,

लेटा हूँ कमरे के अन्दर, बिस्तर पर अपना मन मारे।
खिड़की से झाँक रहे तारे।

सुख का ताना दुख का बाना
स्मृतियों ने बुनना ठाना,
लो कफ़न उठाता आता है कोई मेरे तन पर सारे।
खिड़की से झाँक रहे तारे।

अपने पर ही मैं रोता हूँ
मैं अपनी चिता सँजोता हूँ
जल जाऊँगा अपने कर से रख अपने ऊपर अंगारे।
खिड़की से झाँक रहे तारे।

जिस प्रकार 'निशानिमंत्रण' का प्रथम गीत सन्ध्या के आह्वान का संदेश सुनाता है उसी प्रकार 'एकांत संगीत' का प्रत्येक गीत एक के बाद दूसरा आकर यह स्पष्ट करता है कि कवि की वेदना रचना-क्रम के अनुसार ही बढ़ी है। कहीं कहीं तो कवि अपने जीवन के कार्य कलापों के संबंध में संदिग्ध हो गुनगुनाने लगता है :—

आशाओं का बाग लगा है
कलि-कुसुमों का भाग जगा है,
पीले पत्तों सा मुर्झाया जाता है प्रतिपल तन मेरा!
व्यर्थ गया क्या जीवन मेरा!

क्या न किसी के मन को भाया,
दिल न किसी का बहला पाया?

क्या मेरे उर के अंदर ही गूँज उठा उर क्रन्दन मेरा !
व्यर्थ गया क्या जीवन मेरा !

ऐसे वाक्य तो एक व्यथित सड़क पर चलने वाला सांसारिक व्यक्ति भी न मालूम कितनी बार अनायास ही बड़बड़ा उठता है। लेकिन यह विशेषता तो इस नवयुवक निराश कवि को ही प्राप्त है जो कि यह छोटी छोटी नित्य प्रति की उक्तियों में समस्त जीवन की दार्शनिकता को उँड़ेल रखता है। 'एकान्त संगीत' तो एकान्त वातावरण से पूर्णतया युक्त है। कभी कभी उक्ति बहुलता के प्रवाह में अपने जीवन के समस्त नवोत्साह को फेंकता गिराता और बिखराता चला जाता है। एक गीत में वह अपने मन को शांति देना चाहता है। लेकिन वह संसार से कुछ छिपाना नहीं चाहता" अतः कहता है :—

"मुझसा ही जगभर का जीवन,
सब में सुख-दुख रोदन-गायन,
कुछ बतला, कुछ बात छिपा क्यों एक पहेली व्यर्थ बुझाऊँ।
मैं क्यों अपनी बात सुनाऊँ,"

सामुहिक पवित्रतावादी 'प्रसाद' की कृत्रिमता, गद्य युग के निर्माता श्री० पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की सौन्दर्य-प्रियता अथवा श्री पं० सुमित्रानन्दन पंत का अविवाहित साहित्य निरूपण इन तीनों में से किसी विशेपता की भी 'बच्चन' जी की कविता में प्रमुखता नहीं। वे समझते हैं—

Poetry, in the widest sense, is the record of the impressions made by external realities of every-kind upon greatmen, and of the reflections which these men have made upon them. The subject matter of poetry covers the whole range of human activity as well as eviey known manifestation of physical Nature. For not only are actual events and the doing and sayings of actual persons rep-roduced in it but the rules deduced from the odservation of the conditions of man's life are included in the tone of poetry." प्रगति का यह अग्रदूत कवि चुप बैठना तो जानता ही नहीं, इसके जीवन में जो विषमता है और उसके कारण इसे जो अनुभव है उन्हीं को वह अनायास ही कविता में व्यक्त कर जाता है—

"प्रेयसि, याद है वह गीत ?
गोद में तुझको लिटाकार,
कंठ में उन्मत्त स्वर भर

गा जिसे मैंने लिया था स्वर्ग का सुख जीत !
प्रेयसि याद है वह गीत ?

हूं न जाने तू कहाँ पर;
कंठ सूखा क्षीण तर स्वर

सुन जिसे मैं आज हो उठता स्वयं भयभीत !
प्रेयसि याद है वह गीत ?

तू न सुनने को रही जब
राग भी जब वह गया दब,

तब न मेरी जिन्दगी के दिन गये क्यों बीत !
प्रेयसि याद है वह गीत ?

यह एक नितान्त व्यक्तिगत जीवन को व्यक्त करने वाला गीत है किन्तु निशंक बच्चन उसको भी दुनिया से छिपा नहीं सके। वास्तव में बात तो सच्ची और सीधी सी है कि नियति ने ही इस नवयुवक का जीवन पीड़ित एवं वेदनायुक्त बना दिया है। किन्तु वह उसके निरन्तर प्रहारों को सशक्ति सहते ही चले जाने के लिए सर्वथा उद्यत है। कहीं कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों ये गीत किसी संयमी की आत्म-प्रेरणा है। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि 'निशा निमन्त्रण' से पूर्व के 'बच्चन' गतिवान जगती के साथ ही अपना प्रमाण उड़ाने के लिए उद्यत है। मदिरा और मधुशाला तो केवल उन्होंने इसीलिए चुन लिए है। क्योंकि ये दोनों पदार्थ उनको जीवन-पथ पर अग्रसर करते जाते हैं। लेकिन 'निशानिमंत्रण' में जिस जीवन के प्रति असंतोष के दिग्दर्शन कराये गये हैं उसकी एक भव्य मूर्ति, एक सुन्दर सुविशाल स्वरूप 'एकान्त-संगीत' में हमारे आगे आ खड़ा होता है। अवस्था की प्रौढ़ता के अन्तर्गत ही विश्व-बोध

के कारण इस कवि की आप-बीती उसे आत्मबोध के लिए प्रेरित कर देती है। तभी वे कह उठते हैं:—

मैंने भी जीवन देखा है
अखिल विश्व या आलिंगन में
था जीवन समस्त चुम्बन में
युग कर पाये माप न जिसकी
मैंने ऐसा क्षण देखा है।"

कहीं कहीं तो इस तरुण तपस्वी कवि का स्वर भी अवरुद्ध हो उठा है। समय और परिस्थितियों से इतनी सरल एवं विषाद मय कविता लिखना 'बच्चन' जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए, शायद संभव हो। संभवत: शीघ्र ही वह दिन आवे जब 'निशा-निमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' का भी मधुशाला की भांति जनता में प्रचार हो।

जीवन के सम्बंध में तो इस कवि से पहिले भी प्रसाद अथवा अन्य अधिक प्रतिभाशाली और प्रख्यात कवियों ने बहुत कुछ लिख दिया किन्तु इसका जीवन विवेचन अत्यंत ही विशद हो गया है। वह जीवन के प्रत्येक सत्य का चित्र अपने जीवन 'एलबम' से निकाल दुनिया के समक्ष फेंककर भाग नहीं सकते, अपितु निरन्तर यह समझना चाहते हैं कि उसका क्या प्रभाव पड़ता है। यत्किंचित वह कहीं इस नवीन शैली से विचलित भी हुए तो पुन: वहीं आ गये हैं। उनका

वह प्रवेश आदर्शात्मक मनोभावों का प्रकाशन तो है ही उसके साथ ही साथ यह भी स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि वह 'निशानिमन्त्रण' में आरम्भिक अवश्य है पर आंशिक नहीं है। उसमें समस्त मानवीय सात्विकता भरी है; जीवन के प्रगूढ़ सत्य निहित हैं एवं यौवनोद्वेग की किरणों का नियमित एवं सीमित ऊष्ण है। कारण यह है कि विद्रोह की चिनगारी उसके हृदय में सदैव ही जलती रहती है किन्तु उसे पूर्णतया जला पाने में असमर्थ है। यह सहसा कहीं-कहीं एक अनुभव प्राप्त कर लेता है और उसी को कह उठता—

"पर न दबा यह इच्छा पाता,
मृत्यु-सेज पर कोई आता,
कहता सिर पर हाथ फिराता—

'ज्ञात मुझे दुख जीवन में तुमने बहुत उठाये।'
मैंने गाकर दुख अपनाए।"

किसी व्यक्ति के लिए अपनी अन्तरात्मा की पुकार को ठीक ज्यों की त्योंही व्यक्त कर डालना यदि असंभव नहीं तो दुष्कर तो है ही। जब मनुष्य आत्मबोध की ओर सफलता के साथ प्रयाण करने में लग जाता है तो उसे दुःख और सुख का भी आभास होता है। तभी वह यह भी जान पाता है कि उसने अपने जीवन में क्या क्या किया ? उसमें कितना निरर्थक एवं कितना सार्थक है। ठीक वही हाल है 'एकान्त संगीत' के रचयिता श्रीयुत बच्चन

का। वे अब यह जानने से लगे हैं कि उन्होंने अपना जीवन व्यर्थ ही बिता डाला। वे कहते हैं।

मैं जीवन में कुछ कर न सका
जग में अँधियाला छाया था,
मैं ज्वाला लेकर आया था,
मैंने जलकर ही आयु विता दी पर जगती का तम हर न सका
मैं जीवन में कुछ कर न सका।

अब तो वे जीवन को पूर्ण अंधकारमय समझने लगे हैं! 'एकान्त संगीत' के प्रत्येक गीत में यह एकाकी पथिक जीवन से भागना चाहता है। उसके जीवन में अगम निराशा है एवं जटिल अभाव है। तभी बच्चन ने लिखा भी है:—

"जब तन से फुर्सत पाऊँगा,
नभ मंडल में मँडराऊँगा,
नित नीरव गायन गाऊँगा,
यदि शेष रही मनकी सत्ता मिटने पर मिट्टी की काया।
गिनती के गीत सुना पाया।"

संसार में जन्म-दिन व्यक्तियों के लिए प्रसन्नता का अवसर होता है अथवा पिछला साल बीत जाने पर स्वच्छ एवं आशा-तीत्र भविष्य निकटतर प्रतीत होता है। किन्तु बच्चन तो निराशा से ओत-प्रोत हैं। वे कहते हैं :--

"वर्ष दिन फिर शोक लाया,
सोच दृग में नीर छाया,

बढ़ रहा हूँ भ्रम, मुझे कटुकाल खाता जा रहा है,
जन्म दिन फिर आ रहा है।"

अथवा—

'दो चार बूँदे प्यार की
बरसी कृपा संसार की
हा प्यास पारावार की।
जिनके सहारे चल रही है ज़िंदगी यह वे दया।
क्या साल पिछला दे गया।"

स्थान-स्थान पर कवि को अपनी शक्ति पर संदेह है, अपनी निर्बलता का भय है और इसी कारण कवि 'चढ़ न पाया सीढ़ियों पर' 'क्या दंड के मैं योग्य था'—'मैं जीवन में कुछ कर न सका' 'बीता इकतीस वर्ष जीवन' 'किस ओर मैं किस ओर में,' 'मैं क्या कर सकने में समर्थ' आदि मर्म-स्पर्शी गीत लिख गया है। अंत में जीवन के प्रति बच्चन जी जीवन का साधारण क्रम अभिव्यक्ति कर जाते हैं। उनका विश्वास है कि सभी का जीवन अमर है। प्रत्येक प्राणी मानसिक वेदना से युक्त है। आज की कविता वेदना प्रधान है। वस्तुतः समस्त संसार ही वेदना के अथाह सागर में खोया है। फूल के खिलने और मुर्झाने आदि प्रकृति की प्रत्येक प्रतिक्रिया में जीवन का विषाद निहित है। तब बच्चन जी कह उठते हैं:—

"जो भय से उठता सिहर-सिहर,
जब सोचा करता हूँ पलभर,

उन कलि कुसुमों की टोली पर,
जो आती सन्ध्या को प्रातः है कूच किया करती डेरा।
क्या ध्येय निहित मुझमें तेरा।'

अथवा—

निर्जीव पंक्ति में निर्विवेक
क्रन्दन रव रचना पद अनेक--
क्या यह भी जग का कर्म एक?
मुझको अब तक निश्चित न हुआ, क्या मुझ से होगा सिद्ध अर्थ?
मैं क्या कर सकने में समर्थ।

किन्तु कहीं-कहीं कवि ने एक आशापूर्ण बात भी कही है। उसे इस असंतोष-मय संसार में भी संतोष की बिखरी किरणें दिखाई दे गई हैं। वह कहता है:—

विष का स्वाद बताना होगा
गरल पान करके तू बैठा
फेर पुतलियाँ कर पग ऐंठा
यह कोई कर सकता मुर्दे तुमको अब उठ गाना होगा।

अथवा—

सुनकर होगा अचरज भारी!
दूब नहीं जमती पत्थर पर
देख चुकी इसको दुनिया भर
कठिन सत्य पर लगा रहा हूँ सपनों की फुलवारी।
सुनकर होगा अचरज भारी!

कौन देवतरी नहीं जानता
कुछ फल होगा नहीं मानता,
बलि के योग्य बनूँ इसकी मैं करता हूँ तैयारी।
सुनकर होगा अचरज भारी

इसमें संदेह नहीं कि बच्चन का समस्त प्रयोग उसके एकान्त संगीत को बहुत ही ऊँचा उठा ले जाता है। अंत में तो यह तरुण तपस्वी कवि मानो वेदना की चरम सीमा को भी लाँघ गया है और कहता है—

"खोया सभी विश्वास है,
भूला सभी उल्लास है
कुछ खोजती हर साँस है कितना अकेला आज मैं!
कितना अकेला आज मैं!"

यदि यही प्रयोगों की प्रगति रही तो निस्संदेह बच्चन 'एकान्त संगीत' सदृश न मालूम कितने संगीत काव्य अभी और हमें दे सकेंगे। हमें तो आशा और विश्वास भी यही है।

उपसंहार

इस प्रगति के युग में आज का अग्रदूत कवि न मालूम क्या उथल-पुथल मचा डालना चाहता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के विशाल प्रासाद के निर्माण का भार बहुत कुछ आज के नवयुवक प्रगतिशील निराश एवं जीवन के व्यथित कविगणों की अदम्य सेवा एवं सतत् प्रयत्न पर है। यदि पुरातन काव्य का एक मात्र मूल मंत्र भगवद्भक्ति और अनवरत अध्यवसाय रहा है तो आधुनिक प्रयोग और विकास कालीन कवियों का सतत् परिश्रम जीवन को भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से देखना ही रहा है। पंत ने एक लहर चलाई, भगवती बाबू ने उस तूफ़ान को वेगवान किया और डा० रामकुमार ने अपने मधुर कंठ से वेदना का राग अलाप दिया। महादेवी एवं तारा पाण्डेय आदि ने अपने आँसुओं से न मालूम कितने प्यालों को भर डाला है।

"The earth may sadden, not remove,
Our love divinely given;
And e'en that mortal grief shall prove
The immortality of Love
And lead us nearer"

—Browning.

प्रेम जीवन की एक अनिवार्यता है। प्रेम ही में सेवा का भाव विद्यमान रहता है। स्वयं कष्ट सहकर दूसरे का हित करना प्रेम का परिचायक है। प्रेम मनुष्य को सदैव महत् कार्य की ओर आकृष्ट करता है। 'प्रेम में है वेदना भी' जीवन का एक अगम्य सत्य है। यदि यही बात मानी जावे तो इसमें संदेह नहीं कि प्रयोग कालीन कवियों में से श्री हरिकृष्ण प्रेमी, चन्द्रप्रकाश वर्मा चन्द्र, एवं श्री नरेन्द्र शर्मा आदि की कविताएँ हमारे हृत्तंत्री के तारों को झनझनाती चली जाती हैं। इसी स्वरूप का प्रकटीकरण हमें 'निशानिमत्रण' और 'एकान्त संगीत' के रचयिता बच्चन में भी उपलब्ध होता है। जब कभी बच्चन को प्रेम में निराशा हुई है तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी कविता का क्षेत्र संकुचित हो गया है। प्रेम की संकुचित भावना हृदय में एक झंझावात उठाने के लिये उद्यत है। झंझा मनुष्य को संसारिक जगत से परे ला बैठती है। 'निशा निमंत्रण' की रचना आरम्भ करने से पूर्व सन् १९३६ में देवी श्यामा बच्चन को अकेला ही छोड़कर चल देती हैं। ऐसी परिस्थिति में वेदनात्मक संघर्ष की प्रवृति किसी भी नौजवान के लिए आवश्यक है। बच्चन के 'निशानिमंत्रण' और 'एकान्त संगीत' में एक नैतिक आदर्श प्राप्त होता है।

मानव की यह प्रवृति होती है कि वह अपने आपको बन्धनों से मुक्त चाहता है। कोई भी जीवधारी अपने ज्ञान को अनुचित रूपेण नियमित एवं परिमित नहीं करना चाहता। यदि काव्य को दो भागों में विभक्त कर दिया जावे तो समस्या अत्यंत ही सरल

हो जायगी। वैसे तो यह कहा जाता है कि "Youug meu's love then lies not trwy in their heart but in their eyes" बच्चन के सम्बंध में भी यही बात है। बच्चन की वाणी से शायद इतनी वेदना इतना गूढ़ प्रेम प्रकट न हो जितना कि उनकी चाल ढाल एवं आकृति से। प्रत्येक युग और देश के व्यक्ति अपने साहित्य को उठाने के पक्षपाती ही रहते हैं। नवीन युग की काव्यधारा अनेक सशंक दृष्टि कोणों से देखी जा रही है। साहित्य पर बन्धन लगाना किसी भी साहित्यिक की मौलिकता को क्षति पहुँचाना है। बच्चन के अन्दर वेदना है और उसी के फलस्वरूप उन्मत्त रूप से वे उसमें बह जाना चाहती हैं।

लेकिन यदि उनका एक संक्षिप्त विवेचन किया जाय तो बातें स्पष्ट हो जायेंगी। श्री बच्चन हिन्दी साहित्य में मधुशाला, हाला और प्याला लेकर एक शराबी के रूप में सर्व प्रथम १९३५ में आये। बच्चन जी के नाम के साथ हालावाद इतनी बुरी तरह जोड़ा गया है कि अब तक उससे उन्हें रिहाई नहीं मिल सकी है। 'बच्चन' जी के जीवन की घटनाओं को पढ़ चुकने के उपरान्त हमें यह विदित हो जाता है कि मानव में कितनी उच्छृंखलता संभव है। बाह्य और अन्तर में एक वैषम्य है। उसी को साम्य की सीढ़ी तक लाने के लिए यह आवश्यक होता है कि किसी भी मनुष्य के व्यक्तित्व की रूप रेखा उसकी सहायता करे। बच्चन जी की हाला संघर्षवाद की प्रचारिका है। वह भोले मानव को जीवन में बहुत से नित्यप्रति घटने वाले सत्य सम-

भाती उस पर साम्यवाद, और समाजोत्थान का जादू सा छोड़ती है। उनकी हाला ने उन्हें जीवन संघर्ष के दुखों को भूल जाने में उनकी सहायता की है। बच्चन जी का चितेरा ब्रुश अन्तर और बाह्य में एक यथोचित साम्य स्थापित करता है। उनकी कविता एक जीवन के थके पिटे मुसाफिर की आह है:—

इनके पद्यांशों में परिपक्वता के अतिरिक्त भावुकता से पूर्ण तरलता है। यह प्रत्येक नीरस के उर में कम से कम एक क्षण भर के लिए तो एक नवीन स्फूर्ति एवं संसार के प्रति विद्रोह की धारणा उत्पन्न कर ही देता है। यही दोनों विचार मानव को अभिभूत कर लेते हैं। प्यालों में बच्चन की जीवन-परिभाषा विलुप्त है। वे कहते हैं:—

'मृदु मिट्टी के हैं बने हुए,
प्याले टूटा ही करते हैं'

उनकी मदिरा में केवल उन्मादिनी शक्ति ही नहीं अपितु जीवन को क्षण भंगुरता एवं मानव की साम्य एवं अन्य सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह भावना भी उसमें निहित है। किन्तु बाद की बच्चन की कविता तो बच्चन के व्यक्तिगत जीवन का इतिहास ही प्रतीत होती है। उसके अध्ययनोपरान्त विदित होता है कि कवि का व्यक्तित्व तेजस्वी, अभिमानी, एवं उच्छृंखल और संघर्षमय है। वास्तविक बच्चन केवल भाषा के माध्यम द्वारा अपना एक रेखाचित्र क्षत विक्षत संसार में छोड़ते जाते

है। बच्चन संभवत: समझते हों कि "In Coleridge's View poetry is the antithesis of science, having for its immediate object, pleasure not truth, in Wordsworth phrase it is the finer breath of all knowladige and the impassioned expression which is in the countenance of all science'

कुछ भी हो इसमें संदेह नहीं बच्चन की कविता के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि it is nothing less than the most perfect speech of man that in which he canes nearest the turth, उसी जीवन के प्रकाशन में जीवन का सत्य विदित है। वास्तव में उन्होंने काली स्याही को बिखेर कर एक अबोध शिशु के समान उससे खेल सा किया है। वे कहते हैं—

'बूझ दुनिया यह पहेली जान 'कुछ' मुझको सकेगी'। भाव भाषा की प्रबलता एवं स्वाभाविक प्रवाह, शब्दों का चुनाव और सबसे ऊपर श्री बच्चन का मधुर व्यक्तित्व और संगीत मय कंठ उनकी कविता को सर्वप्रिय बना देता है। वे भाषा को नियमबद्ध करने के सर्वथा प्रतिकूल हैं। उनका विचार है कि हार्दिक अनुभूति के प्रकाशन में पांडित्य का समावेश कविता के समस्त आनन्द को छिन्न-भिन्न कर डालता है। उनकी भाषा में उर्दू का जहाँ तहाँ का पुट उसको और भी अधिक तीव्र एवं हृदयस्पर्शी बनाता है। श्री निराला जी की भांति मुक्तक और

अतुकान्त की ओर भागकर कोई शांति ढूँढ़ निकालना नहीं चाहते। आपका शब्द-चयन अत्यंत ही सुदृढ़ एवं कटु वचनों से मुक्त है। जिसके जीवन-संघर्ष में सदैव क्लिष्टता ही रही हो उसका व्यक्तित्व मधुर एवं प्रकाशन सरल हो जाता है। 'मधु शाला', 'मधुबाला' एवं 'मधुकलश' तीनों में वे समाज को निबाहना चाहते हैं, उसके साथ चलना चाहते हैं किन्तु सर्वथा असफल हो जाने पर आखिर कंधा डालही दिया। 'निशा निमंत्रण' और 'एकान्त संगीत' सर्वथा नवीन प्रयोगों को लेकर लिखे गये उनके विकल उर से निकले दो सौ गीत हैं।

बच्चन जी की कविता के अनेक गुणों में से एक है उनकी मस्ती—दुनिया उसे फाके मस्ती तक कह रही है। किन्तु जीवन के प्रति जो उनकी प्रिय धारणा है उसमें वे कहीं भी हार कर आगे बढ़ना नहीं छोड़ते। यह दूसरी ही बात है कि हार जाने के कारण वे बैठकर क्षण भर आराम कर लेने के बाद पुनः उसी संघर्ष के बहाव में बहने लगते हैं। आज के समस्त कवि जीवन की परिभाषाएँ निर्धारित करने में व्यस्त हैं। बच्चन ने कोई कृत्रिम प्रयत्न तो नहीं किया फिर भी निरन्तर आपकी कविता में उसकी प्रतिच्छाया अवश्य रही है। आठवीं कक्षा से ही कविताएँ लिखने वाला क्या नहीं लिख सकेगा? फिर साहित्य तो एक मानसिक प्रकाशन है। 'बच्चन' की मधुशाला 'आल्हा ऊदल' का स्थान शीघ्र ही पा लेगी इसमें संदेह नहीं। उनकी उमर की रुबाइयों का अनुवाद शायद उनसे किसी हद तक

समता रखने वाला केवल श्रीरघुवंश लाल गुप्त आई० सी० एस० का ही भले हो। एक रुबाई का रूपान्तर करते हुए आप लिखते हैं—

ऊषा ने फेंका रवि पाषाण
निशा भाजन में जल्दी जाग
प्रिये ! देखो पा यह संकेत
रहे कैसे तारक दल भाग !

और देखो तो उठ कर प्राण !
अहेरी ने पूरब में लाल
फँसाली सुल्तानी मीनार
बिछा कैसा किरणों का जाल !"

यदि कविता हमारे हृदय को ओतप्रोत करती न चली जाये तो उसका ध्येयच्युत हो जाता है, प्रभाव क्षीण हो जाता है। किन्तु बच्चन जी की तो प्रत्येक कविता हमारे हृदय को बेधती है। 'कवि की वासना' या 'पथभ्रष्ट' को पढ़ने के उपरान्त कौन पत्थर दिल नहीं पिघल उठेगा। इसमें तो संदेह ही नहीं कि जो कुछ भी 'बच्चन' ने लिखा है वह उसके व्यक्तिगत जीवन का ही प्रकाशन है तो भी वह समस्त मानव समाज की विचार धारा से ओत-प्रोत है। यही कारण है कि बच्चनजी इतनी जल्दी लोक-प्रिय होगये। आज उनका नाम प्रत्येक हिन्दी भाषी के घर में पहुँच चुका है। 'बच्चन' की मधुशाला शायद समस्त

साहित्यिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी न कर सकती हो तो भी वह विशुद्ध तुकबन्दी न होते हुए भी स्थायित्व लिए है—

'वह हाला कर सके शान्त जो
मेरे अन्तर की ज्वाला।
जिसमें मैं बिम्बित प्रतिविम्बति,
प्रति पल है मेरा प्याला॥
'मधुशाला' वह नहीं जहाँ पर
मदिरा बेची जाती है
भेंट जहाँ मस्ती की मिलती
मेरी तो वह मधुशाला॥'

बच्चन की मदिरा प्रत्येक दुनियाबी व्यक्ति के काम की नहीं और न उसका ऐसा नशा ही हो पाता है जिसके फल स्वरूप वह नाली और मोरियों की शरण लेता फिरे, वे तो कह उठते हैं—

'भावुकता अंगूरलता से
खींच कल्पना की हाला।
कवि बनकर है साक़ी आया
भरकर कविता का प्याला।"

यही बच्चन का सब कुछ नहीं। बच्चन की विद्रोह प्रवृति अंतिम दो पुस्तकों—'आकुल अन्तर' और 'विकल-विश्व' में जो कि दोनों ही अभी अप्रकाशित हैं तीव्रतर उपलब्ध होती है। कहीं कहीं वे 'मधुबाला' 'मधुकलश' या 'तेरा हार' में जिस विद्रोह

और विप्लव की अभिव्यक्ति कर गये हैं वह अव्यवस्थित सी होती जाती है। यहाँ तक कि 'निशानिमंत्रण' में तो वे गीत वेदना की चरम सीमा पर पहुँच गये हैं। 'एकान्त संगीत' के अन्तर्गत इस कवि ने समाज अथवा संसार का अनुगामी होने का सिद्धान्त सा फैलाया है। 'जुए के नीचे गर्दन डाल' में वे कहते हैं :—

"तेरे पूर्वज भी घबराये,
घबराये, पर भाग न पाये,
तेरी ख़ुशी नाखुशी का है नहीं किसी को ख्याल।
जुए के नीचे गर्दन डाल!"

समस्त वेदान्तिक सिद्धान्तों को ऐसा प्रतीत होता है कवि ने स्वयं अपने जीवन में अनुभव कर चुकने के उपरान्त दुनिया तक पहुँचाया है। वह इससे पहले भी कह चुका है:—

गीत कह इसको न दुनिया,
यह दुखों की माप मेरे!
काम क्या समझूँ नहीं यदि
गाँठ उसकी खोलने को?
राग क्या समझूँ किसी का
हो न यदि मन बोलने को?
जानता क्या क्षीण जीवन
ने उठाया भार कितना,
बाट में रखता न यदि।

उच्छ्वास अपने तोलने को ?
हैं वहीं उच्छ्वास कल के
आज सुख मय राग जग में,
आज मधुमय गान, कल के
दग्ध कण्ठ प्रलाप मेरे!
गीत कह इसको न दुनिया,
यह दुखों की माप मेरे!

'एकान्त संगीत' के बाद 'आकुल अंतर से निकला तीर तो और भी विषम एवं तीव्रगामी हो गया है। एक गीत में वे लिखते हैं—

कौन है जो दूसरे को
दु:ख अपना दे सकेगा;
कौन है जो दूसरे से
दु:ख उसका ले सकेगा;
क्यों हमारे बीच धोखे का व्यापार जारी।
क्या करूँ समवेदना लेकर तुम्हारी।

उनका सुप्रसिद्ध गीत नीड़ का निर्माण फिर फिर कवि के चारों ओर के समस्त संसार को वेदनामय एवं अतृप्त बना देता है। लेकिन अब हिन्दी संसार उन्हें सशंक दृष्टि से देख रहा है। उनकी २४ जनवरी को हुई शादी ने एक तूफ़ान सा मचा दिया है। संसार प्रश्न पूछने को आतुर है कि अब बच्चन में वेदना कहाँ है। वेदना छूटने पर बच्चन का प्रयाण किधर होगा।

यह कहना सरल नहीं; अत्यन्त ही कठिन है। किन्तु मानव जीवन में वेदना का अंश अनिवार्य है। बच्चन वेदना के अगम पुजारी रहे हैं। यह सोचना कि बच्चन की शादी उनमें से वेदना निकाल देगी केवल एक मिथ्या भावना ही होगी। बच्चन में संगीत है, मधुर कंठ है और सौन्दर्य है। अतएव संसार उसकी चीज़ों की कद्र करता है। वह एक मानव है। इस नाते उसमें त्रुटियाँ भी हैं। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उसके अनुभवों ने उसे इस योग्य बना दिया है कि वह युग का प्रतिनिधित्व कर सके। संसार उसको दूषित नहीं ठहरा सकता। आज, कल, या अधिक से अधिक परसों उसकी चीज़ों का अधिकाधिक आदर करेगा।

विवाहोपरान्त उसकी निम्न कविता उद्बोधन इस कवि की वीरता, उसके अदम्यसाहस एवं उसकी विशाल-हृदयता का कैसा विशद परिचय देती है:—

जीवन में एक सितारा था।
माना वह बेहद प्यारा था।
वह डूब गया तो डूब गया।

अंबर के आनन को देखो।
कितने इसके तारे टूटे।
कितने इसके प्यारे छूटे।
जो छूट गए फिर कहाँ मिले।

पर बोलो टूटे तारों पर अम्बर कब शोक मनाता है।
जो बीत गई वह बात गई।

जीवन में वह था एक कुसुम।
थे उस पर नित्य निछावर तुम।
वह सूख गया तो सूख गया।

मधुबन की छाती को देखो।
कितनी इसकी सूखीं कलियाँ।
मुरझाई कितनी वल्लरियाँ।

पर बोलो सूखे फूलों पर कब मधुबन शोर मचाता है।
जो बीत गई सो बात गई॥

कुछ भी हो श्री 'बच्चन' की एक बहुत बड़ी सेवा हिन्दी साहित्य की है। समाज उसको भुला नहीं सकता।

आगे हम श्रीयुत 'बच्चन' की कुछ चुनी हुई कविताएँ दे रहे हैं जिससे पाठक उनकी कला का परिचय प्राप्त कर सकें।

'बच्चन' जी की प्रमुख कविताएँ

आदर्श प्रेम—

(१)

प्रेम किसी को करना, लेकिन
कहकर उसे बताना क्या ?
अपने को अर्पण करना पर--
औरों को अपनाना क्या ?

(२)

गुण का ग्राहक बनना, लेकिन—
गाकर उसे सुनाना क्या ?
मन के कल्पित भावों से
औरों को भ्रम में लाना क्या

(३)

त्याग-अंक में पले प्रेम शिशु
उनमें स्वार्थ बताना क्या ?
देकर हृदय हृदय पाने की
आशा व्यर्थ लगाना क्या ?

('तेरा हार' से)

पाँच पुकार—

गूँजी मदिरालय भर में
लो, 'पियो' पियो; की बोली !

(१)

संकेत किया यह किसने ?
यह किसकी भौंहें घूमी ?
सहसा मधुबालाओं ने
मद भरी सुराही चूमी;
फिर चलीं इन्हें सब लेकर,
होकर प्रतिबिम्बित इनमें,
चेतन का कहना ही क्या
जड़ दीवारें भी झूमीं
ज्योंही सबने कलि मुख की
मृदु अधर पखुरियाँ खोलीं !
गूँजी मदिरालय भर में
लो, 'पियो, पियो,' की बोली

(२)

जिस अमृतमय वानी से
जग में जीवन जग जाता,
रुकता कैसे वह सुनकर
रसिकों का दल मद माता,

आखों के आगे पाकर
अपने जीवन का सपना
हर एक उसे छूने को
आया निज कर फैलाता;
पा सत्य कलोल उठी कर
मधु के प्यासों की टोली,
गूँजी मदिरालय भर में
लो, 'बढ़ो बढ़ो' की बोली!

(३)

सारी साधें जीवन की
अधरों में आज समाईं
सुख शांति जगत की सारी
छनकर मदिरा में आई,
इच्छित स्वर्गों की प्रतिमा
साकार हुई, सखि, तुम हो;
अब ध्येय विसुधि विस्मृति है
है मुक्ति यही सुखदाई,
पल भर की चेतना भी
अब सह्य नहीं, ओ भोली!
गूँजी मदिरालय भर में
लो 'भरो भरो' की बोली!

(४)

मधुघट कंधों से उतरे।
आशा से आँखे चमकीं।
छल-छल कर माणिक-मदिरा।
प्यालों के अन्दर दमकी।
दानी मधु बालाओं ने।
ली झुका सुराही अपनी।

आरंभ करो कहती-सी
मधुगंध चतुर्दिक गमकी,
आशीष बचन कहने को।
मधुपों की जिह्वा डोली।
गूँजी मदिरालय भर में।
लो, 'जियो जियो' की बोली।

(५)

दो दौर न चल पाये थे
इस तृष्णा के आँगन में,
डूबा मदिरालय सारा
मतवालों के क्रन्दन में!
यमदूत द्वार पर आया
ले चलने का परवाना!

गिर-गिर टूटे घट प्याले
बुझ दीप गए सब क्षण में !
सब चले किए सिर नीचे
ले अरमानों की झोली।
गूँजी मदिरालय भर में।
लो, 'चलो चलो' की बोली।

('मधुबाला' से)

आत्म परिचय—

मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हूँ,
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ,
कर दिया किसी ने झंकृत जिनको छूकर,
मैं साँसों के दो तार लिए फिरता हूँ।
मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ,
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ;
जग पूछ रहा उनको, जो जग की गाते,
मैं अपने मन का गान लिए फिरता हूँ।
मैं निज उर के उद्गार लिए फिरता हूँ,
मैं निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ;
है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता,
मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूँ।

मैं जला हृदय में अग्नि दहा करता हूँ,
दुख सुख दोनों में मग्न रहा करता हूँ;
जग भवसागर तरने को नाव बनाये,
मैं मन मौजों पर मस्त बहा करता हूँ।
मैं यौवन का उन्माद लिए फिरता हूँ,
उन्मादों में अवसाद लिए फिरता हूँ;
जो मुझको बाहर हँसा, रुलाती भीतर,
मैं, हाय, किसी की याद लिए फिरता हूँ।
कर यत्न मिटे सब, सत्य किसी ने जाना?
नादान वहीं है, हाय, जहाँ पर दाना।
फिर मूढ़ न क्या जग जो इस पर भी सीखे,
मैं सीख रहा हूँ, सीखा ज्ञान भुलाना!
मैं और, और, जग और, कहाँ का नाता,
मैं बना-बना कितने जग रोज मिटाता!
जग जिस पृथ्वी पर वैभव जोड़ा करता,
मैं प्रति पग से उस पृथ्वी को ठुकराता!
मैं निज रोदन में राग लिए फिरता हूँ,
शीतल वानी में आग लिए फिरता हूँ,
हों जिस पर भूपों के प्रासाद निछावर;
मैं वह खंडहर का भाग लिए फिरता हूँ।
मैं रोया इसको तुम कहते हो गाना,
मैं फूट पड़ा, तुम कहते, छंद बनाना,

क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए,
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना।
मैं दीवानों का वेष लिए फिरता हूँ,
मैं मादकता निःशेष लिए फिरता हूँ;
जिसको सुन कर जग झूम, झुके, लहराये,
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूँ।

('मधुबाला') से

कवि की वासना—

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा।

(१)

सृष्टि के प्रारम्भ में
मैंने उषा के गाल चूमे,
बाल रवि के भाग्यवाले
दीप्त भाल विशाल चूमे,
प्रथम सन्ध्या के अरुण दृग
चूमकर मैंने सुलाए,
तारिका-कलि से सुशोभित
नवनिशा के बाल चूमे,

वायु के रसमय अधर
पहले सके छू होठ मेरे,
मृत्तिका की पुतलियों से
आज क्या अभिसार मेरा !
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

(२)

विगत-बाल्य वसुंधरा के
उच्च तुंग-उरोज उभरे,
तरु उगे हरिताभ पट धर
काम के ध्वज मत्त फहरे,
चपल उच्छृंखल करों ने
जो किया उत्पात उस दिन,
है हथेली पर लिखा वह,
पढ़ भले ही विश्व हहरे।
प्यास वारिधि से बुझा कर
भी रहा अतृप्त हूँ मैं,
कामिनी, के कुच-कलश से
आज कैसा प्यार मेरा !
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

(३)

इन्द्र धनु पर शीश धरकर
बादलों की सेज सुख पर
सो चुका हूँ नींद भर मैं
चंचला को बाहु में भर,
दीप रवि-शशि-तारिकों ने
बाहरी कुछ केलि देखी,
देख, पर, पाया न कोई
स्वप्न वे सुकुमार, सुन्दर
जो पलक पर कर निछावर
थी गई मधु यामिनी वह,
यह समाधि बनी हुई है,
यह न शयनागार मेरा!
कह रहा जग वासना मय
हो रहा उद्गार मेरा!

(४)

आज मिट्टी से घिरा हूँ,
पर उमंगें हैं पुरानी;
सोमरस जो पी चुका है
आज उसके हाथ पानी,
होठ प्यालों पर झुके तो
थे विवश इसके लिए वे,

प्यास का व्रत धार बैठा
आज है मन, किन्तु, मानी
मैं नहीं हूँ देह–धर्मों से
बँधा जग, जान ले;
तन विकृत हो जाय लेकिन
मन सदा अविकार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

(५)

निष्परिश्रम छोड़ जिनको
मोह लेता विश्व भर को,
मानवों को सुर असुर को,
वृद्ध ब्रह्मा विष्णु हर को,
भंग कर देता तपस्या
सिद्ध, ऋषि, मुनि सन्तनों की,
वे सुमन के बाण मैंने
ही दिये थे पंच शर को
शक्ति रख कुछ पास अपने
ही दिया यह दान मैंने,
जीत पायेगा इन्हीं से
आज क्या मन भार मेरा

कह रहा जग वासना मय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

(६)

प्राण प्राणों से सकें मिल
किस तरह, दीवार है तन,
काल है घड़ियाँ न गिनता,
बेड़ियों का शब्द झन-झन,
वेद लोकाचार प्रहरी
ताकती हर चाल मेरी,
वृद्ध इस वातावरण में
क्या करे अभिलाश यौवन !

अल्प तम इच्छा यहाँ
मेरी बनी बंदी पड़ी है
विश्व क्रीड़ास्थल नहीं रे
विश्व कारागार मेरा।
कह रहा जग वासना मय
हो रहा उद्‌गार मेरा

(७)

थी तृषा जब शीत जल की
खा लिए अंगार मैंने,
चीथड़ों से उस दिवस था
कर लिया शृंगार मैंने,

राजसी पट पहनने की
जब हुई इच्छा प्रबल थी

चाह संचय में लुटाया
था भरा भंडार मैंने
वासना जब तीव्र तम थी
बन गया था संयमी मैं,
है रही मेरी क्षुधा ही
सर्वदा आहार मेरा।
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा।

(८)

कल छिड़ी, होगी खतम कल
प्रेम की मेरी कहानी,
कौन हूँ मैं जो रहेगी
विश्व में मेरी निशानी ?

क्या किया मैंने नहीं जो
कर चुका संसार अब तक ?

वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी ?

मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता,

शत्रु मेरा बन गया है
छल रहित व्यवहार मेरा
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा
('मधुकलश' से)

पथ भ्रष्ट

हैं कुपथ पर पांव मेरे
आज दुनिया की नज़र में !
पार तम के दीख पड़ता
एक दीपक झिलमिलाता,
जा रहा उस ओर मैं
मत्त-मधुमय गीत गाता,
इस कुपथ पर या सुपथ पर
मैं अकेला ही नहीं हूँ,
जानता हूँ, क्यों जगत फिर
उँगलियाँ मुझ पर उठाता—
मौन रह कर इस लहर के
साथ संगी बह रहे हैं,
एक मेरी ही उमंगें
हो उठी हैं व्यक्त स्वर में।

हैं कुपथ पर पाँव मेरे।
आज जगती की नज़र में।

(२)

क्या बताऊँ पोत कितने
पार हैं इसने लगाए ?
क्यों बताऊँ वृक्ष कितने
तीर के इसने गिराए ?
उर्वरा कितनी धरा को
कर चुकी यह क्यों बताऊँ ?
क्या बताऊँ गीत कितने
इस लहर ने हैं लिखाए
कूल पर बैठे हुए कवि से
किसी दुख की घड़ी में ?
क्या नहीं पर्याप्त इतना
जानना, गति है लहर में ?
है कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नज़र में ?

(३)

फल-भरे तरु तोड़ डाले
शांत मत लेकिन पवन हो,
वज्र घन चाहे गिराये
किंतु मत सूना गगन हो,

बढ़ बहादे बस्तियों को
पर न हो जलहीन सरिता,
हो न ऊसर देश चाहे
कंटकों का एक वन हो।
पाप की ही गैल पर
चलते हुए ये पाँव मेरे
हँस रहे हैं उन पगों पर
जो बँधे हैं आज घर में।
हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नज़र में!

(४)

यह नहीं सुनता नहीं, जो
शंख की ध्वनि आरही है,
देव-मंदिर में जनों को
साधिकार बुला रही है,
कान में आतीं अज़ानें,
मस्जिदों का यह निमन्त्रण,
और ही संदेश देती
किन्तु बुलबुल गा रही है,
रक्त से सींची गई है
राह मंदिर-मस्जिदों की,

किन्तु रखना चाहता मैं
पाँव मधु-सिंचित डगर में!
है कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नज़र में!

(५)

है न वह व्यक्तित्व मेरा
जिस तरफ़ मेरा क़दम हो,
उस तरफ़ जाना जगत के
वास्ते कल से नियम हो,
औलिया-आचार्य बनने की
नहीं अभिलाष मेरी,
किसलिए संसार तुझको
देख मेरी चाल ग़म हो?
जो चले युग-युग चरण ध्रुव
धर मिटे पद-चिन्ह उनके,
पद प्रकम्पित, हाय, अंकित
क्या करेंगे दो प्रहर में।
हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नज़र में!

(६)

मैं कहाँ हूँ और वह
आदर्श मधुशाला कहाँ है!

विस्मरण दे जागरण के
साथ, मधुबाला कहाँ है!
है कहाँ प्याला कि जो दे
चिर-तृषा, चिर-तृप्ति में भी!
जो डुबा तोले मगर दे
पार कर, हाला कहाँ है!
देख भीगे होठ मेरे
और कुछ संदेह मतकर,
रक्त मेरे ही हृदय का
है लगा मेरे अधर में!
है कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नज़र में!

(७)

सोचता है विश्व, कवि ने
कक्ष में बहु विधि सजाए,
मदिर-नयना यौवना को
गोद में अपनी बिठाये;
होठ से उसके विचुम्बित
प्यालियों को रिक्त करते,
झूमते उन्मत्तता से
ये सुरा के गान गाए!

राग के पीछे छिपा
चीत्कार कह देगा किसी दिन,
हैं लिखे मधुगीत मैंने
हो खड़े जीवन-समर में।
हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नज़र में!

(८)

पाँव चलने को विवश थे
जब विवेक-विहीन था मन,
आज तो मस्तिष्क दूषित
कर चुके पथ के मलिन कण,
मैं इसी से क्या करूँ
अच्छे बुरे का भेद, भाई,
लौटना भी तो कठिन है,
चल चुका युग एक जीवन'
हो नियत इच्छा तुम्हारी
पूर्ण, मैं चलता चलूँगा,
पथ सभी मिल एक होंगे
तम-घिरे यम के नगर में!
हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया के नज़र में!

('मधुकलश' से)

(९५)

साथी, सब कुछ सहना होगा !

मानव पर जगती का शासन,

जगती पर संसृति का बन्धन

संसृति को भी और किसी के प्रतिबंधों में रहना होगा।

साथी, सब कुछ सहना होगा !

हम क्या हैं जगती के स्वर में !

जगती क्या संसृति सागर में !

एक प्रबल धारा में हमको लघु तिनके सा बहना होगा।

साथी, सब कुछ सहना होगा !

आओ अपनी लघुता जानें,

अपनी निर्बलता पहचानें

जैसे जग रहता आया है उसी तरह से रहना होगा।

साथी, सब कुछ सहना होगा !

('निशा निमन्त्रण' से)

मैं जीवन में कुछ कर न सका !

जग में अँधियाला छाया था,

मैं ज्वाला लेकर आया था,

मैंने जलकर दी आयु बिता, पर जगती का तम हर न सका !

मैं जीवन में कुछ कर न सका !

अपनी ही आग बुझा लेता,
तो जी को धैर्य बँधा देता,
मधु का सागर लहराता था, लघु प्याला भी मैं भर न सका!
मैं जीवन में कुछ कर न सका!

बीता अवसर क्या आयेगा,
मन जीवन भर पछतायेगा,
मरना तो होगा ही मुझको, जब मरना था तब मर न सका!
मैं जीवन में कुछ कर न सका!

कितना अकेला आज मैं!
संघर्ष में टूटा हुआ,
दुर्भाग्य से लूटा हुआ,
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं!
कितना अकेला आज मैं!

भटका हुआ संसार में,
अकुशल जगत व्यवहार में,
असफल सभी व्यापार में, कितना अकेला आज मैं!
कितना अकेला आज मैं!

खोया सभी विश्वास है,
भूला सभी उल्लास है,

कुछ खोजती हर साँस है कितना अकेला आज मैं!
कितना अकेला आज मैं!
('एकान्त संगीत' से)

बीता इकतीस बरस जीवन!
वे सब साथी ही हैं मेरे,
जिनको गृह-गृहणी-शिशु घेरे,
जिनके घर में है शांति बसी, जिनका मुख है सुख का दर्पण!
बीता इकतीस बरस जीवन!

कब उनका भाग्य सिहाता हूँ,
उनके सुख में सुख पाता हूँ,
पर कभी-कभी उनसे अपनी तुलना कर उठता मेरा मन!
बीता इकतीस बरस जीवन!

मैं जोड़ सका वह निधि सयत्न--
खंडित आशाएँ, स्वप्न भग्न,
असफल प्रयोग, असफल प्रयत्न,
कुछ टूटे फूटे शब्दों में अपने टूटे दिल का क्रन्दन।
बीता इकतीस बरस जीवन!
('एकान्त संगीत' से)